अर्थात्

हिन्दी कवियोंके अनूठे चुटकुले

जिन दिन देखे वे कुसुम, गयी सो बीति बहार।
अब अलि रही गुलाबमें, अपत कटीली डार॥

द्वारा

सङ्कलित सम्पादित और प्रकाशित।

२६, हरिसन रोड, कलकत्ता।

प्रथम संस्करण | संवत् १९८२ | मूल्य ॥=) मात्र.

प्रकाशक
बाबू विश्वम्भरनाथ खत्री,
६६, हरिसन रोड,
कलकत्ता।

मुद्रक :—
बाबू नरसिंहदास अग्रवाल,
"श्री लक्ष्मी प्रिण्टिङ्ग वर्क्स"
२७०, अपर चितपुर रोड,
कलकत्ता।

वक्तव्य।

यह पुस्तक हिन्दी-कविता-प्रेमियोंके मनोरञ्जनार्थ प्रकाशित की गयी है। इसमें लिखी सभी आख्यायिकाएं, चाहे सत्य हों या कल्पित, हैं मनो-रञ्जक, इसमें सन्देह नहीं। इसके पढ़नेसे कवियोंकी उद्दण्डता, प्रतिभा, और प्रत्युत्पन्नमतित्वका पता चलता है। यह चुटकुले कुछ तो जनश्रुतियोंके, कुछ अन्यान्य पुस्तकों और सामयिक पत्रोंमें प्रकाशित कवियोंकी जीवनियोंके और कुछ उनकी कविताओंके आधारपर लिखे गये हैं।

पुस्तक बालक बालिकाओं तथा विद्यालयके छात्रोंके लिये वसी ही उपयोगी और उपादेय होगी, जैसी बड़े-बूढ़ों, कवि, और कविता-प्रेमिओंके लिये। कवियोंका विस्तृत जीवन चरित्र लिखने वालोंको इससे सहायता मिलेगी, और साधारण पाठकोंके लिये भी यह रुचिकर होगी। झूठे किस्से-कहानियों और अकबर बीर-बलके लतीफोंसे यह अधिक मनोरञ्जक समझी जायगी; क्योंकि इसमें लिखी घटनाएं बहुधा सत्य हैं। इससे उन्हें यह ज्ञात हो जायगा, कि हमारी हिन्दी भाषामें भी कैसे कैसे धुरन्धर प्रतिभा-शाली और हाजिर-जवाब कवि होगये हैं, और कैसे उन्होंने अपनी कविता-शक्ति दिखाकर राजे-महाराजे और बादशाहोंसे सम्मान प्राप्त किया था। साथ ही उन्हें उत्तमोत्तम कविताओंके पढ़नेका आनंद भी प्राप्त होगा। कवियोंका जीवन-चरित्र और उनकी कविताओंपर संक्षिप्त आलोचनाओंसे विद्यार्थियोंको भी बहुत लाभ होगा। उन्हें यह बात मालूम होजायगी, कि कौन कवि किस समयमें हुआ, और किस राज सभाको सुशोभित करता था।

बहुतोंका कहना है, कि हिन्दी भाषामें जैसे उत्कृष्ट कवि पहले जमानेमें हो गये हैं, वैसे अब नहीं होते उन्हें चाहिये,

कि वैसे कवियोंके अब कदरदान ही कहाँ हैं ! इस ग्रन्थके अवलोकनसे उन्हें जान पड़ेगा, कि कैसे उस समयके राजे महाराजे और नवाब उन कवियोंके एक-एक छन्दपर रीझकर गांव, हाथी, घोड़े और लाखों रुपये दे डालते थे। केशव, गङ्ग, भूषण, और पद्माकर सम्बन्धी चुटकुलोंको पढ़कर उन्हें चकित होना पड़ेगा। अब भी वैसे कवि तैयार हो सकते हैं; यदि उन्हें उचित कदरदान मिलें। मसल मशहूर है "गुन ना हिरानो गुन गाहक हिरानो है।" दूसरा कारण यह है, कि अंग्रेजी विद्याका अधिक प्रचार होनेसे लोगोंकी रुचि इस विषयसे हटती जाती है, और वे कविता सम्बन्धी ग्रन्थ कम पढ़ते-पढ़ाते हैं। तीसरा कारण, दालरोटीका प्रश्न है। बिना स्वाधीनता और बेफिकरीके कवि उत्तम कविता नहीं कर सकता। इस अभागे पराधीन देशकी आजकल यह अवस्था हो रही है, कि विद्यार्थी स्कूलकी पढ़ाई भी शेष नहीं कर पाता, कि उसे कुटुम्ब पालनेके लिये कुछ कमानेका फिक्र पड़ जाता है; ऐसी दशामें कविता सीखना और बनाना बहुत दूरकी बात है। चौथा कारण यह भी हो सकता है, कि अब ब्रज-भाषाके बदले लोगोंकी रुचि खड़ी बोलीकी कवितापर अधिक पायी जाती है। ऐसा होना उचित भी है; क्योंकि ब्रजभाषा एक प्रान्तिक और खड़ी बोली राष्ट्र भाषा समझी जाती है। राष्ट्र भाषाका ही अधिक प्रचार आवश्यक है, और उसीमें कविता बनाना भी अधिक वाञ्छनीय है। खड़ी बोली भी ब्रज भाषाकी तरह एक प्रान्तीय भाषा है; परन्तु आजकल वह जैसे आर्य्यावर्त भरमें हिन्दी गद्य साहित्यका प्रधान भाषा मानी जाती है उसीतरह ब्रज भाषा भी कुछ दिन पहले तक पद्य साहित्यकी प्रधान भाषा मानी जाती थी। इसीलिये उत्तर भारतके, बंगाल छोड़कर, प्रायः सभी प्रान्तोंके कवियोंने ब्रजभाषामें ही कविता की है यदि हम ब्रज भाषाको एक प्रान्तीय भाषा

समझ कर उसका बहिष्कार कर दें, तो हिन्दी-काव्य साहित्यका दिवाला ही निकल जाय। खड़ी बोलीके कट्टर हिमायतियोंसे प्रार्थना है, कि वह आप चाहे खड़ीबोलीमें कविता भले ही करें; परंतु ब्रजभाषामें रचितकाव्य ग्रन्थोंको हिन्दी साहित्यसे पृथक न समझें।

हिन्दीमें कविता सम्बन्धी जितने ग्रन्थ हैं, सभी ब्रजभाषामें हैं। कविता सीखनेके लिये खड़ी बोलीमें न तो कोई रीति-ग्रन्थ है, न कोई 'अलंकारका ग्रन्थ है, और न कोई पिङ्गल ही है। जो कुछ इन विषयोंके नये ग्रन्थ छपे भी हैं; उनकी परिभाषा और लक्षण केवल खड़ी बोलीमें हैं; परन्तु उदाहरण सब ब्रजभाषामें ही हैं। ब्रजभाषामें प्रत्येक विषयके हजारों नहीं तो, सैकड़ों ग्रन्थ अवश्य मिलेंगे। इसलिये यदि कहा जाय, कि खड़ी बोलीमें कविता सीखने और सिखानेका कोई साधन ही नहीं हैं, तो अनुचित न होगा।

यह तो सभी जानते हैं, कि बिना गुरुसे पढ़े सच्ची विद्या नहीं आती। अब तो लोग बिना पढ़े ही कवि बन बैठते हैं, और कविता करने लग जाते हैं। कुछ कवि नामधारी सज्जनोंका तो यह हाल दिखता है, कि थोड़ीसी बंगला सीखली और लगे डा० रवीन्द्रनाथ ठाकुरका भाव खसोटने। हिन्दी शब्दोंकी पूंजी भी इनकी परिमित ही रहती है। इसलिये उन्हींके शब्दोंको तोड़ मरोड़ आगे पीछे रख कविता रूपी एक विचित्र जीव बनाकर खड़ा कर देते हैं। किसी किसीकी भाषा तो ऐसी नरसिंहाकार होती है, मानों फाड़ खानेको दौड़ती है। वे बिचारे यह भी नहीं जानते, कि पिंगल किस चिड़ियाका नाम है, और कविता करनेका प्रयोजन ही क्या है? बहुतेरे तो तुकबन्दीको ही कविता मान बैठे हैं, और कितने उसकी भी आवश्यकता नहीं समझते। इसपर भी तुर्रा यह कि, ऐसे कवि-पुंगवोंकी पीठ ठोकनेवाले भी मिल ही जाते हैं। कुछ सामयिक पत्र इनकी कविता बड़े आग्रह और

अभिमानके साथ प्रकाशित करते हैं; क्योंकि उनको तो "अप-टू-डेट" कवि चाहिये। फिर भला इनका हौसला क्यों न बढ़े? नित्य टीड़ी दलकी तरह नये नये कवि उत्पन्न होते हैं, और बिचारी कविता रूपी खेतीको चाटते जाते हैं, जिसे चतुर किसानोंने सैंकड़ों वर्ष तक हृदयके रक्तसे सींचा है।

बहुतोंका खयाल है, कि खड़ी बोलीमें अच्छी कविता हो ही नहीं सकती। ऐसा कहना भी समीचीन नहीं। देखिये हाली, अकबर आदि उर्दूके कवियोंने जिस भाषामें कविता की है, वह भी तो खड़ी बोली ही है। फिर उनकी कविता ऐसी लोकप्रिय क्यों हुई? इसका कारण यह है, कि वे लोग उस्तादसे भलीभांति सीख कर कविता करने लगे थे। उनके मस्तिष्कमें नये नये भाव उत्पन्न करनेकी शक्ति थी। इसीसे उनकी कविता उत्कृष्ट और प्रभावोत्पादक होती थी। जो लोग बिना गुरुसे पढ़े खाली ले-भगूपनसे काम लेते हैं, और "कहींकी ईंट कहींका रोड़ा भानमतीने कुनवा जोड़ा" वाली मसलको चरितार्थ करते हैं, उनकी रचित नीरस भावहीन कर्णकटु कविता भला कब सहृदय काव्य प्रेमियोंके हृदयोंमें घर कर सकती है। "जीभ निबौरी क्यों लगै, बौरी चाखि अंगूर।"

कभी कभी बड़े बड़े छन्द—छत्रधारी महारथी भी छन्द शास्त्र विरुद्ध सदोष कविता बनानेमें कुंठित नहीं होते। यह तो वही बात है कि "दावाय नुकता संजी गुफतार ग़ैर मौज़ूं। उस्ताद शाइरीके अशआर ग़ैर मौज़ूं।" वे पिंगलकी बहुत सी बातोंको केवल "कौतुक और बखेड़ा" मात्र समझते हैं। उनका कहना है, कि छन्द शास्त्रके नियमोंमें अधिक जकड़े रहनेसे कविके मनका भाव प्रकाशित होनेका मार्ग संकुचित होता है। क्या सूर, तुलसी, केशव आदि महाकवियोंके मनोगत भाव उनकी कवितामें प्रकाशित होनेसे बाकी रह गये हैं? उनकी कविता छन्द शास्त्रकी

मर्य्यादाको लांघ कर कभी नहीं गयी। जो महाशय अपने हृद्गत भाव छन्दोंमें प्रकाशित करनेकी सामर्थ्य नहीं रखते, उनके लिये तो गद्यका विस्तृत मैदान खुला पड़ा है। उसीमें वह सरपट दौड़ क्यों नहीं लगाते, और मन-मानी छलांगें क्यों नहीं मारते? उन्हें कवितामें ही अपने मनोगत भावोंको प्रकाश करनेके लिये कोई बाध्य नो करता ही नहीं, फिर क्यों वे लंगड़ी और भ्रष्ट कविता करके कवि समाजके सामने हास्यास्पद होते और साहित्यको गंदा करते हैं?

मेरे कहनेका यह तात्पर्य्य कदापि नहीं है, कि खड़ी बोलीके सभी कवि ऐसे हैं। बहुतसे सत्कवि ऐसे भी है, जिनकी कविता छन्द शास्त्रानुमोदित परम मनोहर और प्रसादगुणपूर्ण होती है। वे सभी ब्रज-भाषाके ज्ञाता हैं, और दोनों ही भाषाओंमें मधुर कविता कर सकते हैं। ऐसे ही सज्जनोंसे प्रार्थना है, कि वे खड़ी बोलीमें रीतिग्रन्थ बना कर लोगोंको कवि बननेके उपयुक्त कर। जैसे महाकवि केशवदासजी संस्कृतसे ब्रजभषामें ग्रन्थ बनाकर अन्य भाषा कवियोंके पथ प्रदर्शक हुए. उसी तरह वे भी संस्कृत वा ब्रजभाषाके आधारपर खड़ी बोलीके रीतिग्रन्थ बना दें, जिसे पढ़कर हमारे नवीन तथा भावी कवि प्रचलित हिन्दी भाषाके भण्डारको उत्तम भावभूषित काव्य ग्रन्थोंसे भरा पूरा कर द।

विजया दशमी
संवत् १९८३

विनयावनत—
विश्वम्भरनाथ खत्री।

सूची-पत्र।

॥ श्रीः ॥

'कवि-विनोद'

अर्थात्

हिन्दी कवियोंके अनूठे चुटकुले ।

१—चन्द और पृथ्वीराज ।

चन्द हिन्दी-भाषाके आदि कवि माने जाते हैं । ये सर्वदा भारतवर्षके अन्तिम सम्राट् चौहान-कुल-संभूत पृथ्वीराजके साथ रहा करते थे । दिल्लीश्वर पृथ्वीराजके जीवनभरकी कहानियोंका वर्णन इन्होंने अपने बनाये 'पृथ्वीराज-रासो'में किया है । शहाबुद्दीन मुहम्मद गोरीने संवत् १२५० में थानेश्वरकी लड़ाईमें पृथ्वीराजको पकड़ लिया, और उनकी दोनों आंखें फोड़कर कैद कर लिया । उसी समय उनके परमप्रिय सामन्त कविवर चन्दवरदाईको भी कारागृहमें भेज दिया ।

कहते हैं कि पृथ्वीराज शब्दभेदी बाण चलाना जानते थे । एक दिन शहाबुद्दीनका भाई गयासुद्दीन ज्योंही उनके सामने आया त्योंही चन्दने पृथ्वीराजको सम्बोधन कर कहा:—

बारह बांस बत्तीस गज, अंगुल चारि प्रमाण ।
इतने पर पतसाह है, मति चुक्कै चौहान ॥
फेरि न जननी जनमि है, फेरि न खैंचि कमान ।
सात बार तुम चूकियो, अब न चूक चौहान ॥
धर पलट्यौ पलटी धरा, पलट्यौ हाथ कमान ।
चन्द कहै पृथिराज सों, जनि पलटै चौहान ॥

यह सुनते ही पृथ्वीराजने एक शब्दभेदी बाण चलाया और वह तीर ठीक गयासुद्दीनके कलेजेमें जा लगा। वह तो मर गया, पर यवन दल उन दोनोंपर टूट पड़े। बस, चन्दने झटपट यह सोरठा पढ़ा—

अबकी चढ़ी कमान, को जाने कब फिर चढ़ै ।
जनि चुक्कै चौहान, इकें मारिय इक सर ॥

यह कहते ही पूर्व संकेतानुसार पृथ्वीराजने चन्दको और चन्दने पृथ्वीराजको मार डाला।

२—हमीरदेव और मीर मुहम्मद मंगोल ।

एक समय अलाउद्दीन बादशाहने क्रोध करके मीर मुहम्मद-शाह मंगोल नामक एक सरदारके, अपनी एक उपपत्नीसे व्यभि-चारके सन्देहसे, बधकी आज्ञा दी थी। वह रणथम्भौरके अधिपति हम्मीर देवकी शरण गया। बादशाहने हम्मीरसे मंगोलको माँगा; किन्तु धीर वीर हम्मीरने अपने शरणागतको नहीं दिया, और बाद-शाहको उत्तरमें यह लिख भेजा:—

धड़ नच्चौ लोहू बहै, परिबोलै सिरबोल।
कटि कटि तन रनमें परै, तउ नहि देहुं मंगोल॥

और साथ ही यह भी कहा:—

सिंह गमन सुपुरुष वचन, कदलि फरै इकसार।
तिरिया तेल हमीर हठ, चढ़ै न दूजीबार॥

इसीपर अलाउद्दीन हम्मीरपर चढ़ दौड़ा और सन् १३०० में बड़ा युद्ध हुआ, जिसमें हम्मीर देव वीरगतिको प्राप्त हुए। कोई कोई "सिंह गमन" की जगह "सिंह सुअन" कहते हैं।

३—खुशरो और पनिहारियां।

दिल्लीके प्रसिद्ध शायर अमीर खुशरो एक दिन प्यासे कूए पर गये। वहां चार औरतें पानी भर रही थीं। उनमें एक जो उनको पहचानती थी बोल उठी, "यही खुशरो है, जो कविता करता है।" जब खुशरोने उनसे पानी माँगा, तब वह बोली कि "जो आप हमारी चीजोंपर कविता बना द, तो हम आपको पानी पिलावें। एक बोली—"मेरे घर आज खीर हुई थी, उसपर कुछ कहिये।" दूसरीने अपने चरखेपर कुछ कहनेको कहा। तीसरीने अपने कुत्ते पर कुछ कहनेकी फरमायश की। चौथीने कहा कि—"मेरे ढोलकपर ही कुछ कह दीजिये।" खुशरो जो प्यासके मारे विकल थे, बोल उठे:—

"खीर पकाई जतनसे, चरखा दिया जला।
कुत्ता आया खा गया, तू बैठी ढोल बजा॥

ला पानी पिला । इसपर सब बहुत खुश हुईं, और उन्हें पानी पिला दिया ।

४—खुशरो और चिम्मो भठियारिन ।

दिल्लीके बाहर चिम्मों नामकी एक भठियारिन रहती थी। उसके यहाँ नगरके लुच्चे गाँजा, भाँग, चरस प्रभृति पिया करते थे, और जब खुशरो उधरसे निकलते थे, तब वह हुक्का लेकर सामने खड़ी हो जाती थी। एक दिन उसने कहा कि "तुम कविता बनाया करते हो, तो इस बन्दीके नामसे कुछ कह दो ।" तब उन्होंने कहा—

औरोंकी चौपहरी बाजे, चिम्मोंकी अठपहरी ।
बाहरका कोई आवे नाहीं, आवें सारे शहरी ॥
साफ़सूफ कर आगे राखे, जामें नाहीं तूसल ।
औरोंके जहाँ सींक समाये, चिम्मोंके तहाँ मूसल ॥

उस समय बादशाहके यहाँ चौपहरी नौबत बजती थी । भंग कभी इतना गाढ़ी बनती है, कि लोग कहते हैं कि इसमें सींक खड़ी रह सकती है; पर इसके यहाँ इतनी गाढ़ी छनती थी कि उसमें मूसल खड़ा हो जाय ।

अमीर खुशरो फ़ारसीके बहुत बड़े शायर हुए हैं, इनकी बनायी हिन्दी कविता भी बहुत है । इनका देहांत संवत् १३८२ में हुआ ।

५—विद्यापति और छद्मवेशी भगवान शंकर ।

मैथिल-कविकोकिल विद्यापति ठाकुर उन कवियोंमें हैं, जिनके स्थान और कालका निर्णय बहुत वाद-विवादके बाद भी नहीं हो

सका है। विशेषतः विद्यापतिको अपनानेके लिये तो मैथिल तथा बङ्गाली अब तक खींचतान मचाये ही हुए हैं। कुछ लोगोंका कहना है, कि ये मैथिल प्रान्तर्गत बिस्फी ग्राम निवासी थे। इनकी कविता भी उसी भाषामें पायी जाती है। मैथिल कवियोंका यह भी कहना है, कि इतनी सरस कविता आजतक किसी अन्य मैथिल कविने नहीं लिखी। ये शैव थे, और इनकी शिव-भक्तिके सम्बन्धमें किंवदन्ति है, कि शिवने इनकी सेवाओंसे प्रसन्न हो उगना नामधारी सेवक बन इनकी दासता स्वीकार कर ली थी? इनका कविताकाल भी पन्द्रहवीं शताब्दीका मध्यभाग माना जाता है।

एक बार विद्यापति मिथिलानरेशके दरबारमें जा रहे थे। गर्मीका मौसिम था। दो पहरकी कड़ी धूपके कारण प्यास लगनेपर विद्यापतिने उगनासे कहींसे जल ला देनेको कहा। उगनाने उनकी आँख बचाकर तत्काल ही लोटाभर गङ्गाजल लाकर सामने रख दिया। गङ्गाजल सा मधुर जलपानकर प्रसन्नचित्त हो विद्यापतिने उगनासे पूछा,—"तूने इस निर्जल स्थानमें गङ्गाजल कहाँ पाया।" इस प्रश्नका कुछ उत्तर न दे उगना हँसते हुए तत्क्षण देखते-ही-देखते अन्तर्ध्यान हो गया। तब कविवरकी मानसिक तन्द्रा भङ्ग हुई, और वे वियोग-विह्वल हो नीचे लिखा पद गाने लगे:—

उगना रे! मोर कतय गेला। कतय गेला शिव कि कहु भेला।
भांग नहिं बटुआ रुसि बैसलाह। जोहि हेरि आनिदेल हँसि उठलाह।
जे मोर कहता उगना उदेस। ताहिदेब ओकरा कँगना बिसेस।

नन्दन बनमें भेंटल महेश। गौरिमन हरखिल मिटल कलेश।
विद्यापति भन उगनास काज। नहिं हितकर मोर त्रिभुवन राज।

६—विद्यापति और शिवसिंह ।

एकबार मिथिलामें भयङ्कर दुर्भिक्ष पड़ा। इस कारण वहांकी प्रजा राजकर न दे सकी। तत्कालोन मिथिलापति शिव-सिंहने प्रजाकी रक्षाके लिये राजकोषको मुक्तहस्त होकर इस प्रकार व्यय किया कि दिल्लीश्वरको कर चुकाने लायक भी रुपये न बचे। यवनराजको प्रपीड़ित प्रजाकी दयनीय दशापर भी दया न आयी; और कर न देनेके कारण शिवसिंहको बन्दीगृहमें बन्द कर दिया।

विद्यापतिठाकुर उन दिनों जगन्नाथ दर्शनके लिये पुरी गये थे। जब उन्हें यह समाचार मिला, तब सीधे दिल्लीश्वरके दरबारमें पहुंच गये; और शिवसिंहकी मुक्तिकी प्रार्थना की; क्योंकि ये शिवसिंहसे बहुत स्नेह करते थे। उनकी प्रार्थना सुनकर दिल्ली-श्वरने कहा कि "यदि अपनी कविताकी कोई करामात दिखा सको तो तुम्हारे राजाको मुक्त कर देंगे।" सन्ध्याका समय था, कविने शङ्कर भगवानको स्मरण कर निम्नोद्धृत पद गाया :—

सजनि निहुरि फूंकु आगि ॥ टेक ॥
तोहर कमल भ्रमर देखल मदन उठल जागि।
जौं तौंह भाविनि भवन जैवह ऐवह कोनहुं बेला।
जौं ई सङ्कटस जी बाँचत होयत लोचन मेला ॥

भन विद्यापति चाहथि जे विधि करथि सेसे लीला।
राजा शिवसिंह बन्धन मोचन तखन सुकविजीला॥

उस समय दिल्लीश्वरकी बेगम जनानखानेमें भोजन बना रही थी। अदृष्ट बातका कवि द्वारा अक्षरशः सत्य वर्णन सुन बादशाने राजा शिवसिंहको बंधनमुक्त और कविको पुरष्कृत किया।

७—विद्यापति और गङ्गाजी।

जब कविवर विद्यापतिका चौथापन आ गया, और वे अपने नित्य नैमित्तिक क्रियाओंके सम्पादन करनेमें भी अशक्तताका अनुभव करने लगे, तब गङ्गातटपर जाकर भगवत्भजनमें शेष जीवन बितानेके विचारसे पालकीपर सवार हो घरसे निकले। अस्वस्थता इतनी अधिक थी, कि कुछ ही दूर जानेके पश्चात् उन्हें कहारोंको रोककर उतर जाना पड़ा। जीवनसे एकदम निराश हो वहीं उर्ध्वमुख बैठकर वे गङ्गाजीकी स्तुति करने लगे; जो निम्न प्रकार है:—

सुरसरि! सेवि मोरा किछुओ न भेल।
पुनमति गंगा भगीरथ लय गेल॥
जखन महादेव गंग कयल दाने।
सुन भेल जहां मलिन भेल चाने॥
उठ वह बनियां हाट बजार।
एहि पंथ आओत सुरसरि धार॥
छोट मोट भगीरथ छितनी कपारे।

से कोनालि ओताह सुरसरि धारे ॥
विद्यापति भन विमल तरंगे ।
अन्त सरन दिअ पुनमति गंगे ॥

विद्यापतिके मुखसे अन्तिम शब्दके निकलते ही पृथ्वीसे ऊपरकी ओर उठती हुई गंगाजीकी धारा निकलकर कविवरके मुखमें गिरने लगी। इस घटनाके कुछ ही देर बाद उनके पंच-भौतिक शरीरसे प्राणपखेरू उड़ गये।

८—गोरखनाथ और रैदास भगत।

एक दिन गुरु गोरखनाथ रैदास भक्तसे मिलने गये। प्यास लगनेपर उन्होंने पानी मांगा। रैदासजीने उनका खप्पर भर दिया। जब उन्हें सुध आयी कि ये तो जातिके चमार हैं, तब पानी न पिया, और उसे खप्परमें ही रहने दिया। वहांसे वे कबीर-दासजीके पास गये। जब कबीरने उनसे पूछा कि 'खप्परमें क्या है?' तब उन्होंने सारा हाल कह सुनाया। कबीरकी लड़की कमाली पास ही बैठी थी। वह रैदासजीकी सिद्धताको भलीभांति जानती थी; चट उस पानीको पी गयी। पानी पीते ही उसे दिव्य ज्ञान उत्पन्न हो गया। ऐसा अकस्मात् परिवर्त्तन देख गोरखनाथको होश हुआ, और उन्होंने तुरत् रैदासके पास जा उनसे फिर पानी मांगा। इसी बीचमें कमाली अपने पतिके साथ मुलतान चली गयी। रैदासने अपने योगबलसे सारा हाल जान गोरखनाथसे कहा

प्यावत थे जब पिया नहीं, तब तुमने बहु अभिमान किया।
भूला योगी फिरै दिवाना, वह पानी मुलतान गया॥

इनका यह अन्तिम पद "वह पानी मुलतान गया" एक प्रसिद्ध कहावत हो गया है। व्यवसायी लोग इसे बहुत कहा करते हैं। इसका विस्तृत हाल* लोकोक्तिकोषमें लिखा है।

गुरु गोरखनाथजी शैव थे, इनका चलाया मत गोरखपन्थी कहलाता है। कनफटे साधू इसी मतमें होते हैं।

रैदास भगत परम वैष्णव रामानन्दके द्वादश शिष्योंमें थे। दोनोंका ही समय पन्द्रहवीं शताब्दीका मध्यभाग है।

६—कबीर दासजी और कमाल।

कमाल कबीर दासजीके पुत्र थे। यह बराबर अपने पिताकी उक्तियोंका खंडन किया करते थे। जैसे कबीरने कहा है:—

"कहै कबीर दो नावे चढ़िये। एक बूड़े तो एके रहिये॥"

इसके विपरीत कमालने कहा:—

"कहै कमाल दो नाव न चढ़िये। फटै जांघके बूड़के मरिये॥"

इसीसे चिढ़कर एक दिन कबीरने कहा था, कि "बूड़ा बंस कबीरका, उपजे पूत कमाल।"

कोई कोई इसका कारण यह बतलाते हैं कि कबीरने लड़कपनमें ही कमालको उपदेश दिया था, कि सब मनुष्योंको अपना

---

* यह पुस्तक भी हमारे ही यहां मिलती है।

—प्रकाशक

भाई और सब स्त्रियोंको मा, बहन और बेटीके समान समझना। जब कमाल बालिग हुए तब पिताने उन्हें विवाह करनेको कहा। कमाल बोले 'संसारमें मुझे मा, बहन और बेटी छोड़कर चौथी स्त्री ही नहीं दिखती जिसके साथ विवाह करूं।' इसलिये उन्होंने विवाह ही नहीं किया और कबीरका वंश लोप हो गया। कबीर दासजी भी रामानन्दके द्वादश शिष्योंमें थे। यह जुलाहे थे, और कबीरपंथी मतके प्रवर्तक थे।

१०—श्रीपति कवि और बादशाह अकबर।

श्रीपति कवि अकबर बादशाहके दरबारमें नौकर थे। ये महाशय बड़े ईश्वरभक्त और खरी कहनेवाले थे। यहां तक कि बादशाहकी भी कभी खुशामद नहीं करते थे। एक बार कुछ कवियोंने बादशाहसे चुगली खायी, कि यह दरबारका नौकर होकर भी कभी हुजूरकी प्रशंसा नहीं करता, जब चाहें इस बातको आजमा देखिये। एक दिन जब श्रीपतिजी दरबारमें आये, तब सब कवियोंके सामने बादशाहने उन्हें यह समस्या दी:—"करौ सब आस अकब्बरकी।" बादशाहने समझा था कि इस समस्याकी पूर्तिमें इन्हें अवश्य मेरी प्रशंसा करनी पड़ेगी। श्रीपतिजी ताड़ गये, कि यह सब चुगलखोर कवियोंकी चालबाजी है, जिसमें बादशाहका मन मुझसे फिर जाय। उन्होंने सब कवियों और बादशाह तकको फटकार बताते हुए यह कवित्त तत्काल पढ़ सुनाया:—

"एकको छाँड़िकै दूजो भजै, तो जरै रसना वह लब्बरकी।

अबकी दुनियाँ गुनियाँ जो भई, सो तौ बाँधत मोट अडब्बरकी ॥
सरनागत श्रीपति श्रीपतिकी, हमें त्रास नहीं कोऊ जब्बरकी ।
जिनकौं हरिकी परतीत नहीं, सो 'करौ सब आस अकब्बरकी ॥"

यह सुन सब कविगण मन-ही-मन बहुत लज्जित हुए । अकबर बादशाह तो बड़े आस्तिक और गुणग्राही थे । इनकी इस स्पष्ट-वादितापर रुष्ट न हो कर उलटे संतुष्ट हुए, और इनकी प्रशंसाकर बहुत कुछ इनाम दिया ।

यह 'श्रीपतिसरोज'कार प्रसिद्ध श्रीपतिसे भिन्न हैं; क्योंकि उनके और इनके समयके बीच बहुत अंतर है । श्रीपतिसरोज सं० १७७७ में बना है, और अकबरका राजत्वकाल सं० १६१२ से १६६२ तक है ।

११—कुंभनदास और अकबर ।

कुंभनदास जी गोस्वामी वल्लभाचार्य्य जीके शिष्य थे । इनकी गणना अष्ट छापमें थी । एक बार अकबर बादशाहके बुलानेपर इन्हें फतहपुर सीकरी जाना पड़ा था । यद्यपि अकबरने इनका यथेष्ट सम्मान किया, तो भी इन्होंने वहाँ जानेको समय नष्ट करना मात्र समझा, और यह भजन गाया :—

संतन का सिकरी सन काम ॥ टेक ॥
आवत जात पनहियाँ टूटीं, बिसरि गयो हरि नाम ॥
जिनको मुख देखे दुःख उपजत, तिनको करनी परी सलाम ।
कुंभनदास लाल गिरधर बिन और सबै बे-काम ॥

सदैव परम दरिद्री रहनेपर भी इन्होंने कभी किसी राजा महाराजासे धन लेना स्वीकार नहीं किया ।

१२—अकबर बादशाह और फैजी ।

अब्दुल फैज उर्फ फैजी अकबरके प्रधान मंत्री अब्दुल फजलके भाई थे । ये महाशय अरबी, फारसी, संस्कृत तथा और भी कई भाषाओंके प्रगाढ़ पण्डित थे । इन्होंने बादशाहके आज्ञानुसार संस्कृत ग्रन्थोंका फारसीमें अनुवाद किया है । कुछ लोगोंका कहना है, कि अल्लोपनिषद् इन्हींका बनाया हुआ है । भाषामें भी इन्होंने बहुतसे दोहे बनाये हैं ।

एक बार अकबरने इनसे हिन्दुस्थानकी सभी भाषाएं सीखनेके लिये कहा । ये कई वर्षों तक भारतवर्षके सभी प्रान्तोंमें घूम-घूमकर वहांकी भाषाएं सीखते रहे । जब लौटकर घर आये, और दरबारमें हाजिर हुए तो बादशाहने कहा—'फैजी ! किस प्रान्तमें कौन सी भाषा बोली जाती है, वह उदाहरण सहित कहो ।' फैजी सब देशोंकी बोलियां बादशाहको सुनाने लगे । अन्तमें उन्होंने अपनी जेबसे एक शीशी निकाली; जिसमें कुछ कंकड़ भरे हुए थे । बादशाहके सामने शीशीको खड़खड़ाने लगे । अकबरने हँसकर पूछा, "फैजी यह किस मुल्ककी बोली है ?" फैजीने कहा, "खुदावन्द ! यह तैलङ्गी है, और तैलंग देशमें बोली जाती है ।" यह सुन बादशाह और सब सभासद हंसने लगे । वास्तवमें यह बोली बहुत कठिन है, और हिन्दुस्थानकी किसी भाषासे भी मेल नहीं खाती ।

सन् १५६६ ई० में फैजीका देहान्त हुआ। इनकी तनख्वाहका अधिक भाग पुस्तकें खरीदनेमें ही खर्च होता था। कहते हैं, ४६०० पुस्तकें इनके पुस्तकालयमें निकली थीं। ये ऐसे तीव्रबुद्धि थे, कि जो पुस्तक एकबार पढ़ लेते थे, वह इन्हें याद हो जाती थी।

१३—अकबर और मानसिंह ।

मानसिंह १० वर्षकी अवस्थामें अकबरके दरबारमें दाखिल हुए थे। उस समय इनके पितृव्य राजा भगवानदास आमेरकी राजगद्दीको सुशोभित कर रहे थे। जब यह (मानसिंह) पहले पहल बादशाहके सामने हाजिर हुए तो उन्होंने इनको काला और कुडौल देखकर पूछा कि—'जब खुदाकी दरगाहमें नूर बंटा था, तब तू कहां था?' बालक होनेपर भी इन्होंने बड़ी सावधानीसे जवाब दिया कि—'हज़रत! मैं उस समय तो खुदाकी बंदगीमें था; मगर जब बहादुरी और सखावत बंटने लगी, तो मैं नूरके बदले उन्हें ले आया।' यह सुन बादशाह बहुत खुश हुए, और इनको अपने पास रखने लगे। उस दिनसे ५२ वर्ष तक यह बराबर अकबर और जहांगीरकी सेवामें रहकर जंगी कामोंमें लगे रहे। उन्होंने बहादुरीके बड़े बड़े काम किये। किसी कविने इनकी बहादुरीकी प्रशंसामें कहा है:—

जननी जने तो ऐसो जने, जैसो मान मरद्द।
समदर खांडो पखालियो काबुल बाँधी हद्द॥

उनकी उदारताकी तारीफमें हरिनाथ कविका यह दोहा काफी है—

बलि बोई कीरतिलता, करण करी द्वै पात।
सींची मान महीपने, जब देखी कुम्हलात॥

उनका कवितापे्रम भी उनसे सम्बन्ध रखनेवाले अन्य कवियोंके लेखोंमें मिलेगा।

१४—अकबर और रहिमन।

एक दिन बादशाह अकबर अबदुल रहीम खानखाना (रहिमन) के साथ हाथीपर सवार होकर हवा खाने जा रहे थे रास्तेमें एक हाथी दिखायी पड़ा, जो सूंडसे धूल उठाकर अपने ऊपर डाल रहा था। बादशाहने खानखानासे पूछा—

कहु रहीम निज सीसपर, धूर धरत किहि काम।

रहीमने उत्तर दिया—

जिहि रज मुनि पतनी तरी, तिहि ढूंढ़त गजराज॥

आगे चलकर देखा कि एक मकतबमें कुछ लड़के झूम-झूमकर पढ़ रहे हैं, और अपना अपना सबक याद कर रहे हैं। बादशाहने पूछा—

रहिमन बालक पढ़त हैं कहु किमि झोला खाय।

रहीमने उत्तर दिया:—

तन घट विद्या रतनको धरत हलाय हलाय॥

१५—अकबर और बीरबल।

बादशाह अकबरके मुसाहेब-आला राजा बीरबल जब काबुलके पठानोंके हाथसे मारे गये, तब अकबर बादशाहने उनके शोकमें यह दोहा पढ़ा—

दान दीन कहँ दीन, कबहु न दीनो काहु दुख ।
सो तुम हम कहँ दीन, राख्यो कछू न बीरबर ॥

बादशाह इनके मरनेपर ऐसे शोकाकुल हुए, कि कई दिनों तक खाना भी न खा सके, और सच पूछो तो मरणपर्यन्त इस दुःखको न भूले। जब कभी बीरबलकी याद आजाती थी, तब यही कहा करते थे कि "सब सोभा दरबारकी गई बीरबल साथ।" बादशाहका शोक घटानेके लिये लोगोंने यह अफवाह उड़ायी कि बीरबल मारे नहीं गये हैं; किन्तु संन्यासीके वेषमें काँगड़ेमें विचरते हैं। अकबरने विश्वास करके अनुसन्धान कराया; परन्तु यह सब खबरें गप्प निकलीं।

१६—अकबर और कमलापति।

कमलापति नामके एक ब्राह्मण अकबर बादशाहके दरबारमें किसी कामपर नौकर थे। आप बड़े ही दरिद्री थे; पर अपना काम बहुत इमानदारीके साथ करते थे। एक दिन आपने अपनी दुरवस्थापर विचार करते हुए सोचा कि इतने बड़े बादशाहकी नौकरी करके भी मैं सदा दरीद्री ही बना रहा। इसे अपना भाग्यका ही दोष समझना चाहिये। इन्होंने एक कागजपर यह दोहा लिखा:—

अकबर कमला कर गहे, कंचन बरसत मेह।
ऊपर छत्र दरिद्रको छींटो परत न देह॥

उन्होने यह छन्द लिखा ही था कि बादशाह घूमते-फिरते वहां

आ निकले । उन्होंने बादशाहको देख कर चट वह कागज छिपा लिया । बादशाहने समझा कि इसने जरूर कुछ चोरी की है, उसीका हिसाब इसने लिखा होगा, जो मुझे देख कर छिपा लिया । बादशाहने कहा—'जो कागज तुमने छिपाया है, उसे मुझे दिखाओ।' कागज देख उन्होंने उपर्युक्त दोहा लिखा पाया । उसकी दरिद्रता-पर तरस खाकर बादशाहने खजाँचीको एक लाख रुपया देनेका हुक्म दिया ।

१७—अकबर और गंग ।

एक बार अकबर बादशाह रातके समय अपनी एक हिन्दू बेगमके महलमें गये । बेगम नवयौवना थी । वह डरकर भागने लगी । बादशाहने दौड़कर उसे पकड़ लिया । बेगम छूटनेका प्रयत्न करने लगी । इस झटका-झटकीमें बेगमकी कमरसे साड़ी छूट पड़ी । उस समय सामने चिराग जल रहा था । उसने लज्जा-वश दीपकको हाथसे ढककर बुझा दिया; जिससे उसका हाथ जल गया । दूसरे दिन बादशाहने कविगंगको यह समस्या दी—

"किहि कारण सुंदरि हाथ जरी ।"

गंगने उसी समय उसकी पूर्ति इस भांति की—

नई अबला रसभेद न जानत सेज गई जिय मांहिं डरी ।
रसबात कही तब चौंक चली, तब धायके कंतने बांह धरी ॥
उन दोउनकी झकझोरनमें कटिनाभितें अंबर छूट परी ।
करकामिनी दीपक झांपिलियो 'इहि कारन सुंदरि हाथ जरी ॥

बादशाहको बड़ा आश्चर्य हुआ, कि इस घटनाका हाल कविको कैसे मालूम हुआ। जब उन्होंने जाना कि सुकविगण घटना बिना देखे वा सुने भी अपने प्रतिभावलसे यथार्थ पूर्ति कर सकते हैं, तब उन्हें बड़ी प्रसन्नता हुई, और कविको बहुत इनाम दिया। यद्यपि इस छंदमें कविका नाम नहीं है, पर ऐसा सुननेमें आता है कि यह गंगकविका ही है। जो सम्भवतः हो भी सकता है।

१८—तानसेन और सूरदास।

अकबर बादशाहके गवैये तानसेन और सूरदासजीमें बड़ी मित्रता थी। एक दिन तानसेनने सूरदासजीसे उनकी कविताकी प्रशंसामें यह दोहा कहा:—

'किधौं सुरको सर लग्यो, किधौं सूरकी पीर।
किधौं सूरको पद लग्यो, तन मन धुनत शरीर॥'

तात्पर्य यह कि सूरमाका शर, शूलकी पीड़ा, और सूरदासके पद इन तीनोंसे मनुष्य सिर धुनने लगता है।

यह सुन सूरदासजीने उसी समय तानसेनकी प्रशंसामें यह दोहा कह सुनाया:—

विधना यह जिय जानिकै, शेष न दीन्हें कान।
धरा मेरु सब डोलते, तानसेनकी तान॥

सभी जानते हैं कि सर्पके कान नहीं होते। तानसेनजी पहले ब्राह्मण थे, और स्वामी हरिदासजी वृन्दाबनवालेके शिष्य थे। पीछे

ये ग्वालियरवासी प्रसिद्ध गायक मुहम्मद गौससे गाना सीखने गये। उन्होंने अपनी जीभ तानसेनकी जीभसे लगा दी। तभीसे यह मुसलमान हो गये थे।

१९—सूरदास मदनमोहन और अकबर।

सूरदास मदनमोहन (मदनमोहन सूर) संडीलेके रहनेवाले कायस्थ, बहिराइचमें बादशाह अकबरकी तरफसे पदाधिकारी थे। इन्होंने एक बार मालगुजारीके ३१३०००) रुपये साधुसेवामें लगा दिये, और आप डरके मारे भाग गये। जाते समय बादशाह अकबरके पास यह पद लिखकर भेज दिया—

तीन लाख तेरह हजार सब साधुन मिल गटके।
सूरदास मदनमोहन आधी रातको सटके॥

अकबरने ढुंढ़वाकर इनको ब्रजवास करनेके लिये भेज दिया। ये अन्धे नहीं थे। भाषा-कविता अच्छी करते थे। जिन पदोंमें सूरदास मदनमोहनकी छाप है, वे इन्हींके बनाये हुए हैं।

२०—रसखान और अकबर।

रसखान दिल्लीके बादशाह वंशके पठान थे। एक बार श्रीनाथ-जीका चित्र देखकर ये ऐसे मोहित हुए, कि वेष बदलकर उनके मन्दिरमें जाने लगे; परन्तु पौरियाने न जाने दिया। तब ये तीन दिनतक बिना कुछ खाये पिये गोविन्दकुण्डपर पड़े रहे। इसपर गोस्वामी बिट्ठलनाथजीको दया आयी, और मुसलमान होनेपर भी इन्हें शिष्यकर लिया। तबसे ये ब्रजमें ही रहने लगे। एक बार

अकबर बादशाहने इन्हें लिखा कि तुम बादशाह-वंशज होकर क्यों फकीरोंकी तरह यहां फिरा करते हो? यहां हमारे दरबारमें आकर रहो; जहां तुम्हें सब तरहका आराम मिलेगा, और तुम्हारी प्रतिष्ठा भी होगी। रसखानने उत्तरमें बादशाहको यह छन्द लिख कर भेज दिया—

"या लकुटी अरु कामरियापर राजतिहूंपुरको तजि डारौं।
आठहु सिद्धि नवो निधिके सुख नन्दकी गाय चराय बिसारौं॥
नैननसों रसखान जबै ब्रजके बन बाग तड़ाग निहारौं।
कोटिन हूं कल धौतके धाम करीलके कुञ्जन ऊपर वारौं॥"

कहते हैं कि, रसखानको वृन्दावनके किसी कुञ्जमें मानलीला-की छायाके दर्शन हुए थे; उस समय उन्होंने प्रेमाश्रु बहाते गद्गद स्वरमें यह छन्द कहा था—

ब्रह्ममें ढूंढ्यो पुरानन वेदन भेद सुने चित चौगुने चायन।
देख्यो सुन्यो न कबौं कितहूं वह कैसे स्वरूप औ कैसे सुभायन॥
ढूंढ़त ढूंढ़त हार रह्यो रसखान बतायो न लोग लुगायन।
देखो दुरौ यहि कुञ्ज कुटी तट बैठ्यो पलोटत राधिका पायन॥

अपने इष्टदेवको व्यंग भी खूब ही सुनाये हैं। नमूना लीजिये—

सेस महेस गनेस दिनेस सुरेसहु जाहि निरन्तर गावैं।
जाहि अनादि अनन्त अखण्ड अभेद अछेद सुवेद बतावैं॥
नारदसे शुक व्यास रटें पचि हारैं तऊ पुनि पार न पावैं।
ताहि अहीरकी छोहरियां छछिया भर छाछकों नाच नचावैं॥

दानी भये नये मांगत दान हो, जानिहैं कंस तो बांधे न जैहो।
टूटे छरा, बछरादिक गोधन जोधन है सो सबै धरि दैहो॥
रोकत हो मगमें 'रसखान' चलावत हाथ घनो दुख पैहो॥
जैहै जो भूषन काहू तियाको, तो मोल छलाके लला न बिकैहो।

आप ब्रजभूमिके ऐसे भक्त थे कि जन्मान्तरमें भी वहीं उत्पन्न होनेकी अभिलाषा रखते थे। आपने कहा है—

मानुस हौं तो वही 'रसखान' बसौं मिलि गोकुल गांवके ग्वारन।
जो पसु हौं तो कहा बसु मेरो चरौं नित नन्दकी गाय मझारन॥
पाहन हौं तो वही गिरिको जो कियो हरि छत्र पुरन्दर धारन।
जो खग हौं तो बसेरो करौं उहि कालिन्दीकूल कदम्बकी डारन॥

धन्य रसखान और उनकी कृष्णभक्ति! इसीपर रीझकर भारतेन्दु हरिश्चन्द्रने कहा था—"इन मुसलमान हरिजनन पै, कोटिन हिन्दू वारिये।"

बहुत लोग इन्हें सैयद इब्राहीम पिहानीवाले कहते हैं; परन्तु इन्होंने अपनी बनायी "प्रेम वटिका"में स्वयं अपनेको दिल्ली निवासी बादशाहवंशमें उत्पन्न लिखा है। मुगलोंके पहले पठानोंकी बादशाहत थी। पठान और मुगल दोनों ही सैयद नहीं हो सकते।

२१—नरहरि और अकबर।

असनीवाले महापात्र नरहरि कविका अकबर बादशाहके दरबारमें बहुत मान था। बादशाह भी इनको गुरुके तुल्य मानते थे, और अकसर कठिन कामोंमें इनकी सलाह लिया करते थे। सं०

१६३६में अकबरके जलूसका पचीसवां साल था। उस समय बादशाहका मन हिन्दूधर्मकी ओर कुछ झुका हुआ था। नरहरिने सुअवसर जान निम्नलिखित छप्पय बतौर अर्जीके बादशाहके सामने पेश किया—

> अरिहुं दन्त तृन धरत ताहि मारत न सबल कोइ।
> निसि-दिन हम तृन चरैं बोल बोलैं जु दीन होइ॥
> मधुर न हिंदुहि देहिं कटुक तुरकहिं न पियावहिं।
> पुत्र एक हम जानहिं जग अतिसय मन भावहिं॥
> गोरक्ष अकब्बर साह सुनु गो बिनवै जोरे करन।
> कहु कौन चूक मोहि मारियतु मुए चाम सेवहिं चरन॥

कोई कोई कहते हैं कि गऊके गलेमें यह अरजी बांध कर कविजी बादशाहके समीप ले गये थे। इसे पढ़कर बादशाहने गोवध निवारणकी आज्ञा दे दी। हुक्मकी तामील न करनेपर कितने ही लोग मारे जाने लगे। उस समय बादशाहकी तारीफमें नरहरिजीने यह छन्द पढ़ा—

> नेकबख्त दिलपाक सखी ज्वाँमर्द शेरनर।
> अव्वल अली खुदाये दिया विसियार मुल्कजर॥
> तुम खालिक बहुवेस रुकन अल्लाहे आलिम।
> दौलतमंद बुलन्द जोर दुश्मनपर जालिम॥
> इनसाफतुर गोयदखलक कवि नरहरि मुफतनखुनी।
> अकबर बराबर बादशाह दीगर न दीदम दर दुनी॥

इस घटनाका हवाला इस कवित्तमें मिलता है—

नरहरि कवित्तें गऊको बिनतीकौं सुनि,
हूँ गये अकब्बर समीह जैसे नकसी ।
दीनो करुनाकर हुकुम आम खास बीच,
बन्द भयो गोवध खबर फेरो बकसी ॥ *
फैल गयो सुजस दिलीपति जहांन बीच,
हिंसक बिहाल भये बोलें अकबकसी ।
आयु लै कसाइनकी गाइनकौं देत भयो,
गाइनकी मीच लै कसाइनकौं बकसी ॥

ऐसी किंवदन्ति है कि, एकबार मथुरामें अकबरने कतलेआम-का हुक्म दिया। उनका उद्देश्य यह जाननेका था कि, मेरे हुक्म-की तामील कैसी होती है, और कौन मेरा क्रोध शांत करनेके लिये सामने आता है। बादशाही जमानेमें यह रीति थी कि, जब बादशाह कतलेआमका हुक्म देता था, तो अपनी तलवार म्यानसे चार अङ्गुल बाहर निकाल लेता था। बस, सिपाही लोग रैयतोंको काटना आरम्भ कर देते थे। जब बादशाह तलवारको म्यानमें कर लेता, तो अफसर लोग "अमन अमान" कहकर चिल्ला उठते थे, और कतलेआम बंद हो जाता था। बादशाहके हुक्मसे निरपराध प्रजा मारी जाने लगी। किसीकी भी हिम्मत न हुई कि, बादशाहको शांत करके इस प्रजाहत्याको बन्द करावे। यह देख नरहरिजीने एक कागजपर निम्नलिखित छन्द लिखकर बादशाहके सामने रखा—

---

* यह बक्सीराय पुरुषोत्तमदास थे, जो बंगालके बागियोंके हाथसे संवत् १९३६ में मारे गये थे।

नरहरि धरहरिको करै, जननि सुतै विष देइ ।
बारि जु खेतहिं हठि चरै, साहु परद्धन लेइ ॥
साहु परद्धन लेहि नाव करिया गहि बोरै ।
जो पहरू सो चोर प्रीति प्रीतम हठि तोरै ॥
नृपति प्रजहिं दुख देइ कवन समरथ करि धरहरि ।
छतपति अकबर साहु सुनो विनती करि नरहरि ॥

बादशाहने इसे पढ़ कर कविजीका आशय समझकर तलवार म्यानमें कर ली और कतलेआम बन्द हो गया। अकबरने कविके साहसकी प्रशंसा की, और उसे अपनी शक्तिका परिचय भी मिल गया।

२२—नरहरि और बाँधव नरेश।

नरहरिजीकी साधुवृत्ति देखकर बहुतसे राजा महाराजा इन्हें अपने यहां बुलाया करते थे; परन्तु यह महात्मा एक दरबारको छोड़कर दूसरे दरबारमें जाना नहीं चाहते थे। एकबार बांधव नरेश राजा रामचन्द्र बघेलाने उनके पास यह दोहा लिखकर बुलायाः—

"पंकज सेवनमें मधुप, कत करियत अत आँझ ।
कबहुं न चित चालक छलक सरद मालती मांझ ॥
सरित सरोवर सजल बहु, तजि जीवनकी आस ।
चातक स्वातिक बूंद हित, कत मरियत अति प्यास ॥"

आपने उत्तरमें यह कुंडलिया लिख भेजीः—

सरवर नीर न पीवहीं, स्वाति बूंदकी आस ।
केहरि कबहुं न तृन चरै, जो व्रत करै पचास ॥
जो व्रत करै पचास विपुल गज जुत्थ बिदारै ।
धनहुं गर्व ना करै निधन नहिं दीन उचारै ॥
नरहरि कुलक सुभाव मिटै नहिं जब लगि जीवै ।
बहु चातक मरिजाय नीर सरवर नहिं पीवै ॥

२३—नरहरि और हरिनाथ ।

महापात्र कवीश्वर नरहरि अकबरी दरबारके नव-रत्नोंमें गिने जाते थे । असनी ग्राम इन्हें माफीमें मिला था । एकबार इन्होंने दो लाख रुपये आगरेसे अपने पुत्र हरिनाथके पास भेजे, और कहला दिया कि रुपये अच्छी तरह जमा रखना । हरिनाथने देशदेशान्तरसे वाजपेयी, तिवारी, शुक्ल, मिश्र आदि कितनी ही पदवियोंके ब्राह्मण बुलाकर असनीमें बसा दिये । उनको अच्छे अच्छे मकान बनवा दिये और जीविका दी । कुछ दिन बाद नरहरिजी घर आये, और पुत्रसे पूछा कि वे रुपये कहां हैं ? हरिनाथ बोले कि उन रुपयोंसे तो मैंने एक चिड़ियाखाना बनवा दिया । पिताने पूछा कि चिड़िया खाना कहां है, तब उन्होंने यह कवित्त सुनाया:—

'बाज सम पांडे वाजपेयी पच्छिराज सम,
सोहैं हंसराज से त्रिवेदी बड़े गाथके ।
कुही सम सुकुल मयूरसे तिवारी भारी,
जुरी सम मिसिर नवैया जे न माथके ॥

लीला श्रास दीक्षित अवस्थी हैं चकोर चारु,
चक्रवाक दूबे सुरगुरु सुख साथके।
एते द्विज जाने रंग रंगके मैं आने देस
देसमें बखाने चिड़ीखाने हरिनाथके॥

और कहा कि आपने रुपये अच्छी तरह जमा रखनेको कहला दिया था, सो मैंने उन रुपयोंसे अच्छे अच्छे ब्राह्मण दानसम्मानके साथ आपकी असनीमें बसाकर दोनों खजानोंमें वह रकम बड़ी हिफाजतसे जमा करा दी है। नरहरिजीने कहा कि 'अच्छा किया; पर यह शोभा अपनी कमाईसे की होती तो ठीक था।' यह वचन हरिनाथजीके हृदयमें तीर सा लगा। विद्वान और प्रतिष्ठावान तो थे ही, चट घरसे निकल खड़े हुए, और कई दरबारोंमें जाकर बहुत सम्मानके साथ बहुत सा धन कमा लाये।

२४—हरिनाथ और राजाराम।

हरिनाथजी घरसे निकलकर बांधवनरेश राजा रामचन्द्रके पास गये। राजाने गद्दीसे उठकर इनसे मिलनेको बांह फैलायी; पर आपने दूसरी ओर मुंह फेर लिया। राजाने उसी ओर बांह फैलायी, कविने फिर मुंह फेर लिया। इसी प्रकार राजाने चारों ओर कविके मुंहके सामने मिलनेको हाथ फैलाये और कवि दूसरी ओर होते गये। लाचार राजा चुप साध खड़े हो गये, तब हरिनाथने यह सवैया पढ़ा—

आज लौं तोसौं औ मोसौं विपत्ति,

बढ़ी रही प्रीतिकी रीति सहेली ।
ताहित झार पहार मझायके,
आयके देख्यो है भूमि बघेली ॥
श्रीहरिनाथ सो मान करै मति,
मेरी कही यह मान ले हेली ।
भेटत हैं मोहि राम नरेन्द्रजू,
भेटलेरी फिर भेंट दुहेली ॥

तात्पर्य्य यह कि कवि अपनी विपत्तिसे कहता है कि, अभी तक तू मेरी संगिनी थी, अब राजाराम मुझसे भेंट किया चाहते हैं; अतएव तू मुझसे विदा होगी, इसलिये आ अन्तिम भेंट कर ले। फिर, उन्होंने राजाकी प्रशंसामें यह दोहा कहा:—

लङ्का लौं दिल्ली दई, साहि विभीषण काम ।
भये बघेले राम सों, राजा राजाराम ॥

इसपर राजाने प्रसन्न होकर उन्हें हाथी घोड़ा रथ पालकीके सिवा एक लाख रुपये नगद इनाम दिये ।

२५—हरिनाथ और नागा साधू ।

हरिनाथजी जब बांधवनरेशसे सम्मानित हो घरको लौट रहे थे, तब रास्तेमें उन्हें एक नागा साधू मिला । उसने हरिनाथजीकी प्रशंसामें यह दोहा पढ़ा—

"दान पाय दो ही बढ़े, की हरि की हरिनाथ ।
उन बढ़ि ऊंचो पग कियो, इन बढ़ि ऊंचो हाथ ॥"

बढ़ी रही प्रीतिकी रीति सहेली ।
ताहित झार पहार मझायके,
आयके देख्यो है भूमि बघेली ॥
श्रीहरिनाथ सो मान करै मति,
मेरी कही यह मान ले हेलो ।
भेटत हैं मोहि राम नरेन्द्रजू,
भेटलेरी फिर भेंट दुहेली ॥

तात्पर्य्य यह कि कवि अपनी विपत्तिसे कहता है कि, अभी तक तू मेरी संगिनी थी, अब राजाराम मुझसे भेंट किया चाहते हैं; अतएव तू मुझसे विदा होगी, इसलिये आ अन्तिम भेंट कर ले । फिर, उन्होंने राजाकी प्रशंसामें यह दोहा कहा:—

लङ्का लौं दिल्ली दई, साहि विभीषण काम ।
भये बघेले राम सों, राजा राजाराम ॥

इसपर राजाने प्रसन्न होकर उन्हें हाथी घोड़ा रथ पालकीके सिवा एक लाख रुपये नगद इनाम दिये ।

२५—हरिनाथ और नागा साधू।

हरिनाथजी जब बांधवनरेशसे सम्मानित हो घरको लौट रहे थे, तब रास्तेमें उन्हें एक नागा साधू मिला । उसने हरिनाथजीकी प्रशंसामें यह दोहा पढ़ा—

"दान पाय दो ही बढ़े, की हरि की हरिनाथ ।
उन बढ़ि ऊंचो पग कियो, इन बढ़ि ऊंचो हाथ ॥"

यह उसपर ऐसे प्रसन्न हुए कि, सब धन जो राजाके यहांसे लाये थे, उस साधूको दे दिया, और आप खाली हाथ आमेरकी तरफ रवाना हुए।

२६—हरिनाथ और मानसिंह।

जब हरिनाथजी आमेराधिपति सवाई मानसिंहके दरबारमें पहुंचे, तब महाराजकी प्रशंसामें ये दो दोहे सुनाये ; जिसपर दो लाख रुपये इनाममें पाये—

"बलि बोई कीरति लता, करन करी द्वै पात।
सींची मान महीपने, जब देखी कुंभिलात॥ १ ॥
जाति जाति ते गुण अधिक, सुन्यो न अजहूं कान।
सेतु बांधि रघुवर तरे, हेला दै नृप मान ॥ २ ॥"

कहते हैं, महाराज मानसिंहने एक बार प्रतिज्ञा की थी, कि सातों समुद्रोंमें फतह करके खांड़ा धोऊंगा। आपने लंका जीतकर दक्षिण समुद्रमें खांड़ा धोनेके इरादेसे लङ्कापर चढ़ाई की। बहुत सरदारोंने रोकना चाहा; पर राजाका दिल न फिरा। दो चार मंजिल तय करनेके बाद हरिनाथजीको खबर मिली। आपने घोड़ा दौड़ाकर राजासे भेंट की, और यह सोरठा कहा—

विप्र विभीषण जान, रामचन्द्र लंका दई।
मान महीपति मान, दियो दान लीजै नहीं॥

यह सुनते ही आस्तिक राजाने वापिस लौटनेकी आज्ञा दी। सुना जाता है, कि बिदाईके समय महाराजने इन्हें एक घोड़ा चांदी

सोनेके साजसे सज्जित करके दिया । भूलसे उसमें रकाब नहीं थी । जब कविजी चढ़ने लगे; तब राजाने झुककर कहा कि मेरे पीठकी रकाब बनाइये । बेनी कवि,बेंती (जिला रायबरेली) वालेने भी अपने एक कवित्तमें इस घटनाका उल्लेख इस भांति किया है—

“बाजीको सुपीठ पै चढ़ायो पीठ आपनी दै
कवि हरिनाथको कछोहा मान सादरै ।”

हरिनाथजी बड़े भाग्यशाली थे । ये जिस दरबारमें गये, वहीं लाखों रुपये और हाथी घोड़े इनाममें पाये । आप उदार भी बहुत थे । तमाम उम्र आप अपनी और अपने पिताकी कमाईको लुटाते रहे ।

२७—करनेस और नरहरि ।

एकबार अकबर बादशाहने करनेस (कर्णकवि सिरोहिया बन्दीजन) से पूछा कि ‘तुम्हारी जातिमें कौन भाट सबसे ऊँचे गिने जाते हैं ?’ करनेसने कहा ‘जहांपनाह ! सिरोहिये कलगीके समान सबसे ऊंचे हैं ।’ फिर बादशाहने वही प्रश्न नरहरिसे किया । आपने उत्तर दिया ‘हुजूर कर्णका कहना सत्य है, सिरोहिये सिरके समान और हम पांवके समान हैं ।’ बादशाहने प्रसन्न होकर कहा कि ‘और भाट गुणके पात्र और आप महापात्र ।’ तबसे नरहरि वंशवाले महापात्र कहलाये । महापात्रसे महाब्राह्मण न समझना चाहिये । महापात्र फारसीके शब्द आलीफर्जका अनुवाद है; जिसका अर्थ है उच्च-वंशीय ।

२८—करनेस और कोषाध्यक्ष।

करनेस कविजन सिरोहिये अकबर बादशाहके दरबारमें रहते थे। एकबार बादशाहने इनकी कवितापर प्रसन्न होकर अपने कोषाध्यक्षसे इन्हें उचित पुरस्कार देनेको कहा। खजांची साहब बहुत दिनों तक कविजीके साथ टाल मटोल करते रहे; पर टका हाथसे न छोड़ा। कविजीको एक दिन क्रोध आ गया, और खजांची साहबको यह कवित्त सुनाया—

खात हैं हराम दाम करत हराम काम,
घर-घर तिनहींके अपयश छावैंगे।
दोजख हूं जैहैं तब काटि काटि कीरा खैहैं,
खोपरीको गुदो काग टोंटनि उड़ावैंगे॥
कहैं करनेस अब घूस खात लाज नहीं,
रोजा औ निमाज अन्त काम नहिं आवैंगे।
कविनके मामलेमें करैं जौन खामी तौन,
निमक हरामी मरे कफन न पावैंगे॥

करनेसका क्रोध करना वास्तवमें उचित था; क्योंकि अकसर देखा जाता है, कि कामदार लोग राजदरबारोंमें इनाम देनेके समय भांजी मारा करते हैं, और बिना अपनी मुट्ठी गरम किये हाथसे पैसा छोड़नेमें मानों उनकी नानी मरती है!

२९—पृथ्वीराज और रानाप्रताप।

उदयपुर नरेश महाराना प्रतापसिंह अकबरको बादशाह न

सोनेके साजसे सज्जित करके दिया । भूलसे उसमें रकाब नहीं थी । जब कविजी चढ़ने लगे; तब राजाने झुककर कहा कि मेरी पीठकी रकाब बनाइये । बेनी कवि,बैंती (जिला रायबरेली) वालेने भी अपने एक कवित्तमें इस घटनाका उल्लेख इस भांति किया है—

"बाजीको सुपीठ पै चढ़ायो पीठ आपनी दै
　　कवि हरिनाथको कछोहा मान सादरै ।"

हरिनाथजी बड़े भाग्यशाली थे । ये जिस दरबारमें गये, वहीं लाखों रुपये और हाथी घोड़े इनाममें पाये । आप उदार भी बहुत थे । तमाम उम्र आप अपनी और अपने पिताकी कमाईको लुटाते रहे ।

२७—करनेस और नरहरि ।

एकबार अकबर बादशाहने करनेस (कर्णकवि सिरोहिया बन्दीजन) से पूछा कि 'तुम्हारी जातिमें कौन भाट सबसे ऊँचे गिने जाते हैं ?' करनेसने कहा 'जहांपनाह ! सिरोहिये कलगीके समान सबसे ऊंचे हैं ।' फिर बादशाहने वही प्रश्न नरहरिसे किया । आपने उत्तर 'दिया हूजूर कर्णका कहना सत्य है, सिरोहिये सिरके समान और हम पांवके समान हैं ।' बादशाहने प्रसन्न होकर कहा कि 'और भाट गुणके पात्र और आप महापात्र ।' तबसे नर-हरि वंशवाले महापात्र कहलाये । महापात्रसे महाब्राह्मण न समझना चाहिये । महापात्र फारसीके शब्द आलीफर्जका अनुवाद है; जिसका अर्थ है उच्च-वंशीय ।

२८—करनेस और कोषाध्यक्ष ।

करनेस कविजन सिरोहिये अकबर बादशाहके दरबारमें रहते थे। एकबार बादशाहने इनकी कवितापर प्रसन्न होकर अपने कोषाध्यक्षसे इन्हें उचित पुरस्कार देनेको कहा। खजांची साहब बहुत दिनों तक कविजीके साथ टाल मटोल करते रहे; पर टका हाथसे न छोड़ा। कविजीको एक दिन क्रोध आ गया, और खजांची साहबको यह कवित्त सुनाया—

खात हैं हराम दाम करत हराम काम,
घर-घर तिनहींके अपयश छावैंगे।
दोजख हूं जैहैं तब काटि काटि कीरा खैहैं,
खोपरीको गुदो काग टोंटनि उड़ावैंगे॥
कहैं करनेस अब घूस खात लाज नहीं,
रोजा औ निमाज अन्त काम नहिं आवैंगे।
कविनके मामलेमें करैं जौन खामी तौन,
निमक हरामी मरे कफन न पावैंगे॥

करनेसका क्रोध करना वास्तवमें उचित था; क्योंकि अकसर देखा जाता है, कि कामदार लोग राजदरबारोंमें इनाम देनेके समय भांजी मारा करते हैं, और बिना अपनी मुट्ठी गरम किये हाथसे पैसा छोड़नेमें मानों उनकी नानी मरती है!

२९—पृथ्वीराज और रानाप्रताप ।

उदयपुर नरेश महारना प्रतापसिंह अकबरको बादशाह न

कहके सदा तुर्क कहा करते थे । एक बार अकबरसे किसीने कह दिया कि, अब तो महाराना भी आपको बादशाह कहते हैं । बादशाहने खुश होकर यह बात बीकानेरके महाराज रायसिंहके भाई पृथ्वीराजसे कही, जो बादशाहके बड़े कृपापात्र थे । पृथ्वीराजने अर्ज की कि यह किसीने झूठ ही कह दिया है । प्रतापसिंह अपनी धुनका ऐसा पक्का और बातका सच्चा हैं, कि जो हठ उसने पकड़ा है, उसे जीते-जी कभी न छोड़ेगा । आप चाहे इसका निर्णय कर लें । बादशाहने कहा—'अच्छा तुम्हीं इसका निर्णय करो ।' तब पृथ्वीराजने ये दो सोरठे लिखकर महाराणाके पास भेजे—

पातल जो पतशाह, बोले मुखहूंतां बयण ।
मिहिर पिछमदिस मांह, ऊगे कासप राव सुत ॥ १ ॥
पटकूं मूछां पाण, के पटकूं निज तन करां ।
दीजे लिख दीवाण, इन दो महली बात इक ॥ २ ॥

(अर्थात्) प्रतापसिंहके मुंहसे यदि बादशाह शब्द निकले तो कश्यपसुत सूर्य्य पश्चिममें उगे । मैं मूछोंपर हाथ पटकूं या अपने शरीरपर ? दीवान ! दोनोंमें एक बात मुझे लिख भेजिये । तात्पर्य यह कि जो तुम अकबरको तुर्क ही कहो तो, मैं अपने हाथसे मूंछोको ताव दूं, और जो बादशाह कहो तो छाती कूटूं ।

महाराणाने जवाबमें ये दो दोहे लिखकर भेज पृथ्वीराजकी तसल्ली कर दीः—

तुरक कहासी मुखपते, इण दमसूं इकलिंग ।
ऊगे जांही ऊगसी, प्राची बीच पतङ्ग ॥ १ ॥

सुखहूंत पीथल कमंध, पटको मूछां पांण ।
पछटण है जेते पतो, किलमां सिरके वाण ॥ २ ॥

अर्थ—प्रतापसिंहके मुंहसे तो एकलिङ्ग महादेवजी अब भी तुर्क ही कहलायंगे, और सूर्य जहाँ उगता है वहीं पूर्वमें उगेगा। हे पृथ्वी-राज राठौर, जब तक मुसलमानोंपर तलवार चलानेवाला प्रताप-सिंह विद्यमान है, तब तक तुम ख़ुशीसे मूछोंपर हाथ डालो ।

३०—गङ्ग और खानखाना ।

गङ्ग (गंगाप्रसाद) कवि एकनौर जिला इटावाके रहनेवाले ब्राह्मण थे । दिल्ली दरबारमें रहनेके पहले आप आमेरके दरबार-की शोभा बढ़ाते हुए बहुत कुछ प्राप्त करते थे । एक बार आमे-राधीशके मनमें यह विचार उठा कि, गङ्ग कविको मेरे बराबर देने-वाला कोई नहीं है । इतना जानते ही गङ्गजी दिल्लीकी ओर बीर-बलके पास चले । कुछ दूर चलकर मालूम हुआ कि राजा बीर-बल दक्षिणकी मुहीमपर तैनात हुए हैं, जहां जाना बहुत कठिन है ; पर नवाब खानखाना इलाहाबादके किलेमें हैं । यह जानकर आप इलाहाबाद गये ।

वर्षाके कारण नवाब खानखाना यमुना बारहदरीसे मछलि-योंका शिकार खेल रहे थे । कविजीने एक नावपर बैठ बारहदरी-के सामने पहुंचकर ऊँचे स्वरसे यह दोहा पढ़ा—

गङ्ग गोंछ मोछें जमुन, अधरनि सरसुति राग ।
प्रगट खानखाना भयो, कामद बदन प्रयाग ॥

इसके बदले नवाबने कविको खड़ा करके उसे अशर्फियोंसे [illegible]वा दिया ।

कहते हैं कि, निम्नलिखित छप्पयपर खानखानाने गङ्गको ३६ [illegible]ख रुपये दिये ।

चकित भँवर रहि गयो गमन नहिं करत कमल तन ।
अहि फनि मनि नहिं लेत तेज नहिं बहत पवन घन ॥
हंस मानसर तज्यौ चक्क चक्की न मिले अति ।
बहु सुन्दरि पद्मिनी पुरुष न चहै न करै रति ॥
खल भलित सेस कविगंग भनि, रमित तेज रविरथ खस्यौ ।
खानानखान बैरम सुवन, जिदिन क्रोध कर तंग कस्यौ ॥

गंगने नवाबकी प्रशंसामें और भी बड़े जोरदार छन्द बनाये जिनमें दो यहां उद्धृत किये जाते हैं :—

कस्यपके तरनि तरनिके करन जैसे,
उदधिके इन्दु जैसे भयो योगिजानाके (?)
दशरथके राम और श्यामके समर जैसे,
ईशको गणेश ओ कमलपत्र आनाके ।
सिन्धुके ज्यों सुरतरु पौनके ज्यों हनुमान,
चन्दके ज्यों बुध अनिरुद्ध सम्बरानाके ॥
तैसेई सपूत खान बैरमके खानखाना,
वैसई तुराब खां सपूत खानखानाके ॥ १ ॥

प्रबल प्रचण्ड बली बैरमको खानखाना,
तेरी धाक दीपनि दिसान दह दहकी ।

भने कवि गङ्ग तह भारी सूर वीरनके,
उमड़ि अखण्ड दल प्रलय पौन लहकी ॥
मच्यौ घमासान तहँ तोप तीर बान चलैं,
मण्डि बलवान किरवान कोपि गहकी ॥
तुँड मुण्ड काटि जोसन जिरह काटि,
नीमा जामा जीन काटि जिमि थानि ठहकी ॥

२१—गङ्ग और अकबर ।

गङ्गके खानखानासे सम्मानित होनेका हाल जब अकबर बादशाहने सुना; तब उन्हें अपने दरबारमें हाजिर होनेकी आज्ञा दी। कविने हाजिर होकर यह दोहा पढ़ा—

सात द्वीप अरु लोक पुनि, सातो सागर थाह ।
आयो तोपै जानि कै, अकबर अकबरशाह ॥

अकबरने इसपर प्रसन्न होकर आपको अपने नवरत्नोंमें शामिल किया। तबसे आप दरबारी कवि हुए, और गुणी कहलाने लगे। आपकी गणना हिन्दीके श्रेष्ठ कवियोंमें है। किसी कविका कहना है, "उत्तम पद कवि गङ्गके, उपमाको बरबीर"। दासजी भी अपने काव्यनिर्णयमें लिखते हैं, "तुलसि गंग दोऊ भये, सुकविनके सरदार'। आप फारसी भी अच्छी जानते थे; जिसके प्रमाणमें आपका निम्नलिखित छन्द दिया जा सकता है।

कौन घड़ी करि हैं विधिना जब रूएआं दिलदार मुबीनम् ।
आनन्द होय तबै सजनी दर मोहबत यार निगार नशीनम् ।

ान पियारी मिले जब हीं दर बागे वश्ल गुले शवि
ूरत मित्रकी चित्त बसी कवि गंग चुनाचूं नकश
निम्न लिखित कवित्तमें आपने अत्युक्तिकी हद कर .

बैठी ही सखिन मध्य पीयको गमन सुन्यो,
सुखके समूहमें वियोग आग भरकी।
गंग कहै त्रिविध सुगंध लै बह्यौ समीर,
लागत ही वाके तन भई व्यथा ज्वर की
तहांते वह पौन जब गयौ मानसर पै तो,
लागत ही औरै गति भई मानसरकी।
जलचर जरे औ सिवार जरि छार भई,
जल जरि गयो पङ्क सूख्यो भूमि दरकी

३२—गंग और बीरबल।

गंगजी जब पहले पहल बीरबलके दरबारमें गये,
लेसकी प्रशंसामें यह कवित्त पढ़ा—

मालती शकुन्तला सी को है कामकन्दला सी,
हाजिर हजार चाह नहीं नौल नागरै।
ऐल फैल फिरत खवास खास आसपास,
चोवनकी चहल गुलाबनकी गागरै॥
ऐसी मजलिस तेरी देखी राजा बीरबर,
गंग कहै गूंगी ह्वै कै रही है गिरा ग
महि रह्यौ मागधनि गीत रह्यौ ग्वालियर,
गोरा रह्यौ गोरना अगर रह्यौ आगरै

"भ्रमर भ्रमत" छप्पयपर बीरबलने इन्हें एक लाख रुपए
ा था ।

आपने बीरबलके यशके विषयमें यह कवित्त बनाया था—

आवत हौं चल्यौ शिव शैल तें गिरीश जाँचे,
मिलो हुतो मोहि जहां सागर सगरको ।
कविनकी रसनाके पालकी पै चढ़्यौ जात,
संग सोहै रावरो प्रताप तेज वरको ॥
कवि गंग पूंछी तुम को हौ कित जैहो उन,
कह्यौ मोसों हंसिके सनेसो ऐसो थरको ।
जस मेरो नाम मेरो दसो दिस काम मेरो,
कहियो प्रनाम हौं गुलाम बीरबरको ॥

३३—गङ्ग और जहाँगीर ।

जब संवत् १६६२ में अकबरका देहान्त हुआ, और नूरुद्दीन
मद् जहांगीर तख्तपर बैठा, तब कवि गंगने यह छप्पय पढ़ा—

दलहि चलत हल हलत भूमि थल थल जिमि चल दल ।
पल पल खल खल भलत विकल बालाकर कुल कल ॥
जब पट्टह ध्वनि जुद्ध धुन्ध धुद्धव धुद्धव हुव ।
अरर अरर कटि दरकि गिरत धस मसत धुकन ध्रुव ॥
भनि गंग प्रवल महि चलत दल जहांगीर तुव भारतल ।
फुं फुं फणीन्द्र फण फुंकरत सहस गाल उगलित गरल ॥

जहांगीरने प्रसन्न होकर बदस्तूर दरबारमें हाजिर रहनेका
दिया ।

कहते हैं कि एक दिन गंग जहांगीरको कवित्त सुना रहे थे। जहांगीर उस समय अपने पायजामेमें हाथ डाले हुए थे। यह देख-कर गंगने कहा, 'बादशाह सलामत, कवीश्वरोंके कवित्त सुनकर मर्दोंका हाथ मूंछपर जाता है, आप यह क्या कर रहे हैं?' इस बातसे चिढ़कर जहांगीरने कवि गंगको हाथीसे चिरवा डाला। यह देख कर दरबारके अमीरोंने इसका बहुत शोक मनाया और बाद-शाहसे अर्ज की कि गंगके समान दवी शक्ति रखनेवाला दूसरा कवि पैदा नहीं होगा। बादशाहने भी अफसोस जाहिर किया, और गंगके १० वर्षके लड़केको अपने दरबारम बुलाया। इस बच्चेने दरबारमें आते ही बादशाहको एक पद सुनाया जो अश्लील होनेके कारण यहां नहीं लिखा गया।

पदको सुना वह बालक फूट-फूटकर रोता हुआ लौट गया। इस घटनासे जैनखांवाली घटनाके ही सत्य होनेका अधिक प्रमाण मिलता है, जो नीचे लिखी जाती है।

३४—गंग और जैन खां।

नूरजहांका भाई नवाब जैन खां गंगसे बहुत द्वेष रखता था। गंगने भी कई कवित्तोंमें उसकी हजो उड़ायी है। एक दिन उन्होंने दरबारमें यह दोहा पढ़ा—

"कभो न गां* रण चढ़े, कभी न बाजी बम्।
सकल सभाको राम राम, विदा होत कवि गंग।"

इससे जैन खांने अपना अपमान समझा। यह अकबरी समय

न था। वह जहांगिर बादशाहकी अति प्यारी नूरजहां बेगमका भाई था। बस गंगको हाथीके पांवोंसे कुचलवानेका हुक्म होगया।

गंगके शोकमें कवियोंने कई कवित्त लिखे हैं, जिनसे विदित होता है, कि उनके साथ ऐसा क्रूर वर्ताव होनेसे उस समय बहुत क्षोभ फैला था। कुछ कवित्तोंके अंश ये हैं—

(१) गंगसे गुनीनको गयंदसे तुड़ाइये।
(२) जैन खां जुनारदार मारे एकनौरके।
(३) गंग मार्‌यौ...जहाज बूड़्यौ गुनको।
(४) गंगको लेन गनेश पठायो। इत्यादि।

३५—गङ्ग और तुलसीदास।

सुना जाता है कि कविगंग और तुलसीदासजी परस्पर मित्रताका भाव रखते थे। गोस्वामीजीको महावीरजीका इष्ट था। एक दिन वह काशीमें गंगातटपर बैठे रामनाम जप रहे थे। उस समय उनके मस्तकमें सिन्दूर खूब लगा हुआ था। अकस्मात् उधरसे कहीं गंगजी भी आ निकले। गोस्वामीजीको इस वेषमें देख गंगजीने मजाक करते हुए कहा "तुलसी भाई, क्या हाथीकी तरह मस्तक रंगे यहां बैठे हो"। गोस्वामीजीने कहा "भाई, हाथी जाने, और तुम जानो"। कहते हैं कि इस घटनाके कुछ ही दिनों बाद जहांगीरकी आज्ञासे गंग हाथी द्वारा कुचलवा डाले गये थे।

३६—राजामान और उनका कटक ।

आमेराधिपति महाराज मानसिंहने अकबर बादशाहकी आज्ञा-से जब काबुलपर चढ़ाई की, तो रास्तेमें अटक नामक दरयाव पड़ा। अटकके पार जाना हिन्दू धर्मके विरुद्ध समझा जाता था; इसलिये उनके कटकके सैनिक आगा पीछा करने लगे। यह देख महाराजने यह दोहा कहाः—

सबी भूमि गोपालकी, यामें अटक कहा।
जाके मनमें अटक है, सोई अटक रहा॥

यह सुन सब फौजी दरयावके पार उतर गये।

३७—महाराजा मानसिंह और एक कवीश्वर।

किसी कविश्वरको किसी आदमीके १०००) देने थे। जब कविको उसने बहुत ही तंग किया; तो कविने महाराजाके ऊपर इस कवित्तम हुण्डा लिख दीः—

सिद्ध श्री मानसिंह कीरत विशुद्ध भई,
तौलौं करो राज जौलौं भूमि तिरवेनी है।
रावरी कुशल हम सिसुन समेत चाहैं,
घरी-घरी पल-पल यहां हू सुचेनी है॥
हुण्डी एक तुम पर कीनी है हजार की सो,
कविनको राखो मान साह जोग देनी है।
पहुंचे परिमान भान वंसके सपूत मान,
रोक गिन देनी जस लेखे लिख लेनी है॥

महाराजने फौरन हुंडी सकार रुपया गिन दिया, और जवाबमें यह दोहा उस कवीश्वरको लिख भेजा:—

महाराज हैं हम इतै, उतै आप कविराज।
हुंडी लिखी हजारकी, नेक न आई लाज॥

३८—खानखाना और महड़ूजड्डा।

नवाब खानखाना जैसे फारसी संस्कृत और हिन्दीमें कविता करते थे, वैसे ही मारवाड़ी भाषामें भी कर सकते थे। एक बार महड़ू जाड़ा नामक चारणने उनकी प्रशंसामें ये चार दोहे कहे:—

खानखान नव्वाबरो, मोहि अचंभो यह।
मायो किमि गिरि मेरु मन, साढ़ तिहत्थी देह॥ १
खानखान नव्वाब रै; खांड़ै आग खिवंत।
जलवाला नर प्राजलै, तृणवाला जीवंत॥ २
खानखान नव्वाबरी, आदमगीरी धन्न।
मह ठकुराई मेर गिर, मनी न राई मन्न॥ ३
खानखान नव्वाबरा, अड़िया भुज ब्रह्मंड।
पीठे तोहै चंडिपुर, धार तले नव खंड॥ ४

इन चार दोहोंका अर्थ यह है:—(१) मुझे यही आश्चर्य है कि नव्वाब खानखानाका मेरु पर्वत समान मन साढ़े तीन हाथकी देहमें कैसे समाया? (२) खानखाना नव्वाबकी तलवारसे आग झड़ती है, उसमें पानीवाले अर्थात् पराक्रमवाले नर तो जल मरते हैं, और जो दांतोंमें तिनका दबा लेते हैं, वह जी जाते हैं। (३)

नव्वाब खानखानाकी भलमनसी धन्य है ! मेरुगिरि जैसी बड़ी ठकुराईको उन्होंने अपने मनमें राईके समान भी नहीं माना । (४) खानखाना नवाबके भुज ब्रह्मांडमें अड़े हुए हैं । चंडीपुर अर्थात् दिल्ली तो उनकी पीठपर और नवखंड तलवारकी धारके नीचे हैं । यह कवि मोटा बहुत था । इसलिये लोग इसे 'जाड़ा जाड़ा' कहते थे । नाम इसका करन था । खान खानाने उसे देख कर यह दोहा कहा:—

धर जड्डी अम्बर जड़ा, जड्डा महड्डू जोय ।
जड्डा नाम अलाहदा, और न जड्डा कोय ॥

अर्थात् पृथिवी बड़ी है, आकाश बड़ा है, ईश्वरका नाम बड़ा है, और जड्डा महडू बड़ा है, और बड़ा कोई नहीं है ।

खानखानाने प्रति दोहा एक लाख रुपया देना चाहा; परन्तु जाड़ा महडूने नहीं लिया । उसने महाराणा प्रतापसिंहके भाई सीसोदिया जगमालजीको बादशाहसे जागीर दिलानेको कहा ; यह अपने भाईसे रूठ कर चले आये थे, जाड़ा इन्हींका वकील बनकर खानखानासे मिला था ।

खानखानाने बादशाहसे अर्ज करके जगमालजीको जहाजपुरका परगना दिला दिया, जो पहले मेवाड़का था, परन्तु बादशाहने ले लिया था ।

३८—रहिमन कवि और एक खत्रानी ।

एक दिन रहिमन कवि (नव्वाब अब्दुल रहीम खानखाना)ने यह आधा दोहा बनाया:—

"तारायन शशि रैन प्रति, सूर होहिं ससि गैन ।"

और दूसरा चरण नहीं बना सके। रोज़ रात्रिके समय यह आधा दोहा पढ़ा करते थे। दिल्लीमें एक खत्रानीने यह हाल सुन दूसरा चरण इस प्रकार बना उनके समीप भेज दिया, और बहुत इनाम पाया।

"तदपि अँधेरो है सखी, पीव न देखे नैन ॥"

अर्थात् रात्रिको सभी तारे चंद्रमा हो जायँ और चंद्रमा सूर्य्य हो जाय तो भी बिना प्रियतमको आंखसे देखे अंधेरा ही रहता है।

४०—खानखाना और एक ब्राह्मण

नव्वाब अबदुल रहीम खानखानाकी उदारता जगतमें प्रसिद्ध है। अकबरके समयमें उनकी बड़ी प्रतिष्ठा थी, और उन्होंने बड़े बड़े काम भी किये; पर जहांगीरके राज्यकालमें उनसे कुछ न हो सका, बल्कि उन्हें बहुत बार अपमान सहना पड़ा था। उनका सब धन भी निकल गया था। एक दिन कोई ब्राह्मण कन्यादाय-ग्रस्त होकर उनके पास आया, और अपनी अरजी लिखकर उनके पास भेजी; जिसमें उनकी उदारतका बहुत कुछ बखान किया गया था। खान-खाना उस समय बहुत तंगदस्त हो रहे थे। जो कुछ उनसे बना अपने आदमीके हाथ उस ब्राह्मणको भिजवा दिया, और साथ ही यह दोहा भी लिख कर भेज दिया:—

ये रहीम दर दर फिरैं, माँगि मधुकरी खाहिं।
यारों यारी छाँड़ दो, वे रहीम अब नाहिं ॥

४१—टोडरमल और उनकी कविता ।

अकबरके वजीरे आजम महाराजा टोडरमल टंडन (खत्री) अपने समयके अद्वितीय बुद्धिमान पुरुष थे । हिसाब किताब और माली मामलेके समझनेमें उनकी बड़ी प्रसिद्धि थी; जो महाजनी दस्तूर, वही खातेका हिसाब, हुंडी, चिट्ठीके लिखनेका ढंग इस समय तक यहांके वैश्योंमें जारी है, उनकी प्रधान बातें महाराजा टोडर मलकी ही चलायी हुई हैं। बंग देशमें आकर उन्होंने पठानोंको जिस वीरतासे सीधा किया था; उसमें उनकी बहादुरीकी भी धाक है। पर यह कम आदमी जानते हैं कि वह कवि भी थे,और उनकी बनायी बहुतसी कविता भी हैं। वह कविता है उसी ढंगकी जिस ढंगके वह स्वयं थे। उनकी कविता दुष्प्राप्य होनेके कारण हम पाठकोंके अवलोकनार्थ कुछ यहां उद्धृत कर देते हैं। हुंडी क्या है उसके विषयमें आप कहते हैं:—

ऊपर लिखे निवास सब, रक्खे मुद्दत होय ।
चलन निशां अन्दाज धन, हुंडी कहिये सोय ॥
हुंडी खोये पैठ लिख, पैठ गये पर-पैठ ।
सनद एकके दाम दे, रोकड़ खाता डेठ ॥
जो हुंडी सिकरे नहीं, जिकरी लिखे बनाय ।
हुंडी कोरी पीठले, तब धन देय चुकाय ॥

इन्हीं नियमोंका पालन अभी तक होता चला आता है।

उराफ और व्यापारीके लक्षण—

हुंडी लिखे न हाथसे, जमा न रक्खे भूल ।
लेय व्याज देवे नहीं, सोई सराफी मूल ॥
जग सराफ ताको कहै, जमा समय पर देय ।
व्यापारीसो जानिये, समय पै मुद्दत लेय ॥

चौधरीके लक्षण—धारा बाँधे बाँट, हाकिम रैयत मानहीं ।
सो चौधरिका ठाट, ताके सकल अधीन हों ॥

अढ़तियाके लक्षण—साफ हिसाब किताब हो, रोब सिताबी काम
कर्म धर्म अरु भर्म हो, संचित धन औ धाम ।

साहूकारके लक्षण—आधा ऊपर आधा तरे, आधादेय साहके घरे
आधेमें आधा निस्तर, जुग टर जाय साह नहि टरै

उनके समयमें कहां कहांकी सराफी नामवर थी—

प्रथम बनारस आगरा, दिल्ली औ गुजरात ।
अग्गर* औ अजमेरसे, सिखै सराफी बात ॥

बही खाता लिखनेका ढङ्ग—

बाम जमा दक्षिण खरच, सिर पेटा पर पेट ।
ऊपर नाम धनी लिखै, हस्ते पुनरौ डट ॥

किन चीजोंका वाणिज्य करना चाहिये—

प्रथम जवाहिर धातु पुनि, कपड़ा गल्ला बीर ।
मूल पात फल फूल रस, धरै धीर कर धीर ॥

---

* मालुम नहीं इसमें 'अग्गर' किस स्थानको कहा है। मालवेमें एक अग्गर नामका स्थान है और दूसरा अग्रवाल लोगोंका प्रसिद्ध नगर अगरोहा है जो हिसार जिलेमें उजाड़ पड़ा है। शायद इन दोनोंमें से कोई उस समय आबाद हो।

अर्थात् खूब सोच विचार कर कि कौन चीज कितने दिन ठहरनेवाली है उसका वाणिज्य करना उचित है।

उनके सिद्धान्त यह थेः—

मकां, अदालत, जामिनी, परनारीको साथ।
यह चारों चौपट करैं, रहै दूर तजि आस॥ १॥
दाना खाय लीद जो करै, ऐसा बनज साह ना करै।
घास खाय दूध बहु देय, ऐसा बनज साह करि लेय॥ २॥

अर्थात् घोड़ा न पाले गऊ पाले। बही खाता फुरतीसे लिखा जाय; इसलिये इन्होंने मात्रा विहीन मुड़िया अक्षर चलाये थे और उसका नाम सराफी रखा था। उनका कहना है—

देवनागरी अति कठिन, स्वरव्यञ्जन व्यौहार।
ताते जगके हित सुगम, मुंडा कियो प्रचार॥

क्या वैश्य, क्या खत्री और क्या दूसरे सराफेवाले वही अक्षर लिखते हैं। विरादरीकी शक्तिको इन्होंने इतना बढ़ाया था कि विवाह आदिमें उनके गीत गाये जाते हैं। टोडरमलने ही बादशाहसे कहकर दलालीका पेशा केवल खत्रियोंके ही लिये नियत करा दिया था। आगरा दिल्ली आदि कई शहरोंमें अद्यावधि खत्री और उनके पुरोहित सारस्वतके सिवाय अन्य जातिवाला बाजारमें दलाली नहीं करने पाता। इनके बनाये नीति विषयके भी कई कवित्त अन्यान्य पुस्तकोंमें छपे मिलते हैं।

४२—मीराबाई और तुलसीदास।

मीराबाई अपने उपास्यदेव गिरिधरलालकी भक्तिमें निमग्न

रहा करती थी, और भजन बना बनाकर अपने इष्ट देवके सामने प्रति-दिन बड़े प्रेमसे गाया और नाचा करती थी। इनके यहां साधुओंकी बड़ी भीड़ सत्सङ्ग करनेके लिये हरवक्त लगी रहती थी। इस कारण, इनके पतिके स्वजनोंने लोकापवादके भयसे पहले तो इन्हें बहुत समझाया बुझाया; परन्तु इनके न माननेपर वे इन्हें मारनेकी नीयतसे अनेक यत्न करने लगे। घरवालोंके अत्याचारसे तंग आकर मीराने तुलसीदासजीको निम्नलिखित पत्र लिखा और उनकी अनुमति चाही।

स्वस्ति श्री तुलसी गुन भूषन दूषन हरन गुसाईं।
बारहिंबार प्रनाम करउं अब हरहु शोक समुदाई॥
घरके स्वजन हमारे जेते सबनि उपाधि बढ़ाई।
साधु संग अरु भजन करत मोहि देत कलेश महाई॥
बालपने त मीरा कीन्ही गिरिधर लाल मिताई।
सो तो अब छूटत नहिं क्योंहूं लगी लगन बरियाई॥
मेरे मात पिताके सम हो हरि भगतिन सुखदाई।
हमको कहा उचित करिबेको सो लिखियो समुझाई॥

इसपर गोस्वामीजीने यह उत्तर भेजा था—

जाके प्रिय न राम बैदेही॥
तजिये ताहि कोटि वैरी सम यद्यपि परम सनेही॥
तज्यौ पिता प्रहलाद बिभीषन बंधु भरत महतारी।
बलि गुरु तज्यौ कंत ब्रज बनितन भे सब मंगलकारी॥
जाते होय सनेह राम तें सुहृद सुसेव्य जहांलौं।

अंजन कौन आंखि जो फूटे कहियत बहुत कहां लौं ॥
तुलसी सो सब भांति मुदित मन पूज्य प्रानत प्यारो ।
जाते होय सनेह राम तें सोई मतो हमारो ॥

इस पत्रको पाकर मीराबाई घर छोड़कर वृन्दावन होती हुई द्वारिका धाम पहुंची, और वहीं रणछोरजीकी सेवामें दिन बिताकर अपनी मानवी लीला संवरण की ।

यद्यपि पाठकोंको यह भ्रम होगा कि, मीराबाई इतिहाससे तुलसीदाससे पहलेकी ठहरती हैं; पर यहां तो विनोदसे मतलब है; जो मैंने महाराज रघुराज सिंहके लेखके आधारपर लिखा है ।

४३—होलराय कवि और तुलसीदासजी ।

बाराबंकी निवासी होलराय कवि अकबर बादशाहके दरबारमे रहते थे । उन्होंने होलपुर नामका एक ग्राम अपने नामसे बसाया था । किसी समय गोस्वामी तुलसीदासजी अयोध्यासे लौटते समय होलपुरमें आये । होलरायने गुसांईजीके लोटेकी प्रशंसामें कहा:—

लोटा तुलसीदासको, लाख टकाको मोल ।

इसपर गुसाईंजी बोले—

मोलतोल कछु है नहीं, लेहु राय कवि होल ।

होलरायने उस लोटेको मूर्ति समान स्थापितकर उसपर चबतरा बंधवा दिया, और बराबर उसकी पूजा करते रहे । सुना जाता है, कि उनके वंशधर अद्यावधि उसी तरह उसकी पूजा करते चले आते हैं ।

होलरायने अकबरी दरबारकी प्रशंसामें यह कवित्त बनाया है--

दिल्लीत न तख्त ह्वै है बख्त ना मुगल कैसो,
ह्वै है न नगर बढ़ि आगरा नगरतें ।
गंग त न गुनी तानसेन तें न तानबाज,
मानतें न राजा औ न दाता बीरबर त ॥
खान खानखाना तें न कवि नरहरि तें न,
ह्वै है न दिवान कोऊ बेडर टोडर तें ।
नवों खण्ड सातों दीप सातहूं समुद्र माहिं,
ह्वै है ना जलालुद्दीनशाह अकबर तैं ॥

४९—गोस्वामी तुलसीदास और मधुसूदनाचार्य ।

गुसाईंजीका जन्म राम उपासनाके प्रचारार्थ ही इस जगतमें हुआ था। जब बनारसमें रहनेसे उनकी रामायणकी चर्चा चारो तरफ फैली, तो वहांके बड़े बड़े पण्डित विद्वान् उनसे शास्त्रार्थ करने आये, और कहा कि 'भाषाका प्रमाण बतलाइये।' उत्तरमें गुसाईं-जीने यह दोहा कहा—

हरिहर जस सुर नर गिरा, वर्णहिं संत सुजान ।
हाँड़ी हाटक चारु चिर, राँधै स्वाद समान ॥

जब पण्डितोंने उस समयके प्रसिद्ध विद्वान् मधुसूदनाचार्य दण्डी स्वामीसे जाकर यह बात कही, तो स्वामीने यह श्लोक पढ़कर गुसाईंजीको धन्यवाद दिया—

परमानन्द पत्रोऽयं जंगमस्तुलसी तरुः ।
कविता मञ्जरी यस्य राम भ्रमर भूषितः ॥

यह सुनकर उस दिनसे पण्डितोंने भी उनसे द्वेष करना छोड़ दिया ।

४५—तुलसीदासजी और उनकी रामभक्ति ।

स्वनामधन्य गोस्वामी तुलसीदासजी ऐसे अविचल राम-भक्त थे कि, सिवाय रामके दूसरे देवताओंके जप करनेका उपदेश ही नहीं देते थे । उन्होंने कहा है कि—

राम नामको छांड़िके, और करै जो जाप ।
तुलसी ताके मूंहमें, नौसादरको बाप ॥

अर्थात् गू । गूके पूत नौसादर यह मसल बहुत प्रसिद्ध है ।

यह महात्मा संसार भरको राममय ही देखते थे । एकदिन किसीने इनके सामने मथुराका माहात्म्य कहा । तब इन्होंने उसे यह दोहा सुनाया—

तुलसी मथुरा राम है, दूजा जाने जोय ।
आदि अन्तको छोड़िकै, वाके मुखमें सोय ॥

अर्थात् "थू" । मेरी समझमें इन दोहोंका तुलसीदास कृत होना सन्देह जनक है । शायद भक्तिके आवेशमें ऐसा कह भी दिया हो ।

४६—तुलसीदास और एक बरात ।

एक दिन गोस्वामी तुलसीदासजी कई आदमियोंके बीच बैठे ज्ञानचर्चा कर रहे थे । उस समय उसी राहसे किसीकी बरात आ निकली । बाजेकी आवाज सुनकर सबके सब दुचित्त हो गये ।

तब तुलसीदासजी हंस पड़े। हंसते देख किसीने पूछा, महाराज आप क्या देखकर हंसे? उन्होंने जवाब दिया—दुनियां की भूल देखकर।—पूछा सो क्या? तब उन्होंने यह दोहा कहा—

फूले फूले फिरत है, आज हमारो ब्याव।
तुलसी गाय बजायके देत काठमें पांव॥

उर्दूके किसी कविने भी कहा है;—

हंसली गलेमें नौशहके हरगिज न जान तू।
यह लानतीका तौक़ है जो के गले पड़ा।

४७—तुलसीदास और उनकी वृन्दावनयात्रा।

गोस्वामी तुलसीदासजी जब ब्रजभूमिकी यात्रा करते हुए वृन्दावन पहुंचे; तब उन्होंने वहां देखा कि, सिवाय राधाकृष्णके कोई रामका नाम तक नहीं लेता। इससे उन्होंने आश्चर्यित हो-कर यह दोहा पढ़ा—

तुलसी या ब्रज भूमिमें, कहा राम सों बैर।
राधाकृष्णा रटत हैं, आक ढाक अरु कैर॥

एकबार किसी मन्दिरके महन्त, जिनका नाम परशुराम था, गोस्वामीजीको किसी श्रीकृष्ण मन्दिरमें छलसे ले गये। गुसाईं-जी कृष्ण-मूर्तिको देख प्रेम-विह्वल हो ज्यों ही प्रणाम करनेको थे कि, परशुरामने व्यङ्गसे यह दोहा पढ़ा—

अपने अपने इष्टको, नमन करत सब कोइ।
'परशुराम' बिनु इष्टको, नमै सो मूरख होइ॥

यह सुन कर गुसाईंजी बोले—

कहा कहौं छवि आजुकी, भले बने हो नाथ ।
तुलसी मस्तक तब नवे, धनुष बान लो हाथ ॥

कहा जाता है कि गुसाईंजीकी ऐसी अटल भक्ति देखकर भक्तवत्सल भगवान्‌को रामरूप धारण करना पड़ा। तुलसीदासजीने प्रेम-पुलकित हो प्रणाम किया, और साथ ही यह दोहा भी पढ़ा—

कित मुरली कित चन्द्रिका, कित गोपिनके साथ ।
तुलसी जनके कारने, नाथ भये रघुनाथ ॥

इसपर उक्त महन्तजीने लज्जित हो तुलसीदासजीसे क्षमा प्रार्थना की। तुलसीदासजीने वृन्दावनकी महिमा इस दोहेसे यों प्रकट की है—

वृन्दावन वैकुण्ठको, तौल्यौ तुलसीदास ॥
भारी रह्यौ सो रहि गयो, हलको गयो अकास ॥

४८-तुलसीदासजी और अबदुल रहीम खानखाना

एक समय किसी दरिद्र ब्राह्मणको कन्यादानके लिये रुपयोंकी जरूरत हुई। वह निरुपाय होकर तुलसीदासजीके पास गया। उसकी लड़की विवाह योग्य हो गयी थी; परन्तु उसके पास कुछ भी न था। इसलिये बहुत चिन्तित था। गोस्वामीजीको उसकी दीनतापर बहुत तरस आया। उन्होंने यह आधा दोहा लिखकर उसीके हाथ रहीमके पास भेज दिया—

सुरतिय नरतिय नागतिय गर्भ धरैं सब कोय ।

उस ब्राह्मणने खानखानाके पास जाकर तुलसीदासका पत्र दिखाया, और अपना सारा हाल कहा । खानखानाने उसे आवश्यकतानुसार धन दिया, और निम्नलिखित दूसरा चरण लिख दोहेकी पूर्तिकर तुलसीदासके पास भेज दिया—

गर्भधरे हुलसी फिरै सुत तुलसी सो होय ।

हुलसी तुलसीदासजीकी माताका नाम भी था ।

४६—प्रवीन और इन्द्रजीत सिंह ।

उड़छानरेश इन्द्रजीतसिंहके यहाँ संगीतका अखाड़ा था। उनके यहां षट्पातुर थीं; जिनमें राय प्रवीन प्रधान थी। प्रवीन इन्द्रजीतकी प्रेमिका थी। वेश्या होनेपर भी वह पतिव्रता थी। अकबरने उसके रूपलावण्यका वर्णन सुन उसे अपने यहाँ आनेका हुक्म दिया। उस समय राय प्रवीनने इन्द्रजीतकी सभामें जाकर यह कवित्त पढ़ाः—

आई हौं बूझन मन्त्र तुम्हें निज
सासन सों सिगरी मति गोई ।
देह तजौं कि तजौं कुल कानि
हिये न लजौं लजिहैं सब कोई ॥
स्वारथ औ परमारथको पथ
चित्त विचार कहौ अब सोई ।
जामें रहै प्रभुकी प्रभुता अरु
मेरे पतिव्रत भंग न होई ॥

इस बातपर इन्द्रजीतने उसे अकबरके यहाँ न भेजा। तब अकबरने क्रोध करके उनपर एक करोड़ रुपया जुरमाना कर दिया उस समय केशवदासने आगरे जाकर बीरबलकी सिफारिशसे जुरमाना माफ कराया; परन्तु प्रवीनको दरबारमें हाजिर होना पड़ा। उसने अपना पातिव्रत किस तरह बचाया उसका हाल प्रवीन और अकबरमें पढ़िये।

५०—प्रवीनराय और अकबर

ओड़छा नरेश इन्द्रजीत सिंहके यहां प्रवीनराय नाम्नी एक वेश्या रहती थी। यह कविता करनेमें भी बड़ी निपुण थी। महाकवि केशवदासजीने इसीके नाम पर अपना प्रसिद्ध "कविप्रिया" नामक ग्रन्थ बनाया है। इसके रूप और गुणकी प्रशंसा सुन कर अकबर बादशाहने इसे अपने दरबारमें हाजिर होनेका हुक्म दिया। जिस समय प्रवीन दरबारमें आयी तो बादशाहसे इस प्रकार प्रश्नोत्तर हुआः—

बाद०—युवन चलत तिय देहते, चटकि चलत किहि हेत।
प्रवीन—मनमथ बारि मशालको, सैंति:सिहारो लेत॥
बादशाह—ऊँचे ह्वै सुरबस किये, सम ह्वै नरबस कीन!
प्रवीन—अब पताल बस करनकौं, ढरकि पयानो कीन॥

इसके पीछे जब प्रवीनने यह दोहा पढ़ा—

विनती राय प्रवीनकी सुनिये शाह सुजान।
झूंठी पतरी भखत हैं, बारी, बायस, स्वान॥

तब बादशाहने उसकी रिहाई की, और वह पुनः इन्द्रजीतके पास आ गयी।

५१—केशवदास और बीरबल।

प्रवीन रायको न भेजनेपर अकबर बादशाहने इन्द्रजीत सिंह-पर एक करोड़ रुपया जुर्माना किया। उसे माफ कराने केशव दासजी आगरे आये, और महाराज बीरबलसे मिलने उनके घर गये। बीरबल भीतर थे। कहला भेजा कि मेरे पेटमें अजीर्ण हो गया है, बाहर नहीं आ सकता, फिर आना। केशवने सुनकर यह दोहा लिख भेजा—

जस जार्‌यौ सब जगतको, भयो अजीरन तोय।
अपजस की गोली दउँ, तत्कालहिं सुधि होय॥

इसको पढ़ते ही बीरबल बाहर निकल आये, और केशवने उनको देखते ही यह सवैया पढ़ा—

पावक पंछी पसू नर नाग नदी नद लोक रचे दस चारी।
केशव देव अदेव रचे नर देव रचे रचना न निवारी॥
कै बरबीर बली बरको सु भयो कृत कृत्य महाव्रत धारी।
दै करतापन आपन ताहि दियो करतार दुवो करतारी॥

इस छन्दको सुनकर महाराज बीरबल इतने प्रसन्न हुए कि उन्होंने छः करोड़ दामकी हुण्डियां, जो उनके दुशालेके कोनेमें बँधी थीं, खोलकर उसी समय केशवजीको दे दीं। इसके धन्य-वादमें केशवने यह छंद पढ़ाः—

केशवदासको भाल लिख्यौ विधि रंकके अंक बनाय संवार्‍यौ ।
छोड्यौ छुट्यौ नहिं धोये धुयो बहु तीरथके जल जाय पखार्‍यौ ।
ह्वै गयो रंक ते राउ तहीं जब बीरबली बलबीर निहार्‍यौ ।
भूलि गयो जगकी रचना चतुरानन बाय रह्यौ मुख चार्‍यौ ॥

तब बीरबलने अतिप्रसन्न होकर फिर कहा, जो मांगना हो सो मांगो ।

केशवने दो बातें मांगी । एक बादशाहसे कहकर राजा इन्द्रजीतका जुरमाना माफ कराया जावे और दूसरा दरबारमें बे रोक टोक आनेकी आज्ञा मिले । बीरबलने दोनों ही बातें प्रसन्नता पूर्वक स्वीकार कर लीं ।

यों ही कह्यौ जु बीरबल, मांगु जो मांगन होय ।
मांग्यौ तुव दरबारमें, मोहिं न रोके कोय ॥

चुगलोंने यह खबर बादशाह तक पहुंचायी । बादशाहने बीरबलको बुलाकर सब हाल सुना और कहा कि उन उत्तम बातोंके बदलेमें तुमने कविको कुछ भी न दिया । साथ ही जुरमाना माफ किया; पर प्रवीन रायको दरबारमें हाजिर होना पड़ा ।

(देखो प्रवीन और अकबर)

बीरबल जब काबुलके युद्धमें मारे गये तब केशवदासने उनके विषयमें यह कहा था:—

पापके पुञ्ज पखावज केशव सोकके संख सुने सुखमामें ।
झूठकी झालर झांझ अलीककी आवत जूथन जानि जमामें ॥
भेदकी भेरी बड़े डरके डफ कौतुक भौ कलिके कुरमामें ।
जूझत ही बलबीर बजे बहु दारिदके दरबार दमामें ॥

५२ केशव और इन्द्रजीत

केशवदासजी इन्द्रजीत सिंहकी सभाके राजकवि उनके मुसाहिब तथा गुरु भी थे। जबसे वह उनपर किये हुए एक करोड़का ज़ुर्माना माफ करा आये तबसे उनका बहुत सम्मान होने लगा। इसी समय इन्द्रजीतने उन्हें २१ गांव दिये। केशवदासजीने स्वयं ही कहा है।

"भूतलको इन्द्र इन्द्रजीत जीवै जुग जुग,
जाके राज केशोदास राज सो करत है।"

ऐसी किंवदन्ति है कि एक दिन राजा इन्द्रजीत सपरिवार जसनमें बैठे थे। केशवजीसे राजाने कहा कि ऐसा करो जिससे यह आनन्द कुछ दिन बना रहे, और उपयुक्त लोगोंका वियोग सहना न पड़े। केशवजीने प्रेत यज्ञ करके यह आनन्द सदा स्थिर रखना चाहा। यज्ञ आरम्भ हुआ। पूर्ण होनेपर सबके सब यज्ञशालामें दब कर मर गये। कहते हैं वह यज्ञशाला अब ओड़छाके किलेकी भांति उजाड़ पड़ी है। कुछ दिन पहले दिनमें भी लोग वहां जानेसे डरते थे, रातको बेतवे नदीके पार खड़े होनेसे यज्ञशालाकी रोशनी दिखायी देती थी, और तबले सारंगीकी आवाज सुनायी पड़ती थी। यह भी प्रसिद्ध है कि बहुत काल पहले जो लोग वहां जाते थे, उन्हें प्रेतगण मनुष्य स्वरूपमें मिलते थे। यदि वह प्रेतोंको केशवकी:कविता सुनाते तो प्रेत उनको न सताते थे। धीरे धीरे वहांका आना जाना लोगोंने बंद कर दिया।

इस कथाका हाल किसी इतिहासमें नहीं मिलता। इससे कल्पित जान पड़ती है; पर यह बहुत दिनसे विख्यात है। केशवदासके भूत होनेका प्रमाण तुलसी, देव तथा अन्यान्य कवियो-की कवितामें भी पाया जाता है जो इनके समकालीन या कुछ ही पीछे हुए हैं। अब तक भी कवि लोग इनको कठिन काव्यके प्रेत कहते हैं।

५३ केशव और उनकी कविता।

प्राचीन लोगोंका कथन है कि "रसिकप्रिया"के किसी कवित्तके एक चरण "मखतूलके झूल झुलावत केशव भानु मनौं शनि अंक लिये" में केशवजीने असंभव उपमा लिखी है, जिसके कारण राधिकाजीने इनसे स्वप्नमें एक दिन कहा कि तुम्हारी प्रेतोंकी सी वुद्धि है। इसके वाद केशवजीने उड़छेमें प्रेत यज्ञ किया और कुछ काल पीछे मरकर प्रेत हुए, आप ऐसे रसिक थे कि यज्ञ करके आपने यह वर मांगा कि यदि मैं प्रेत होऊं तो किसी कुएं में मेरा निवास हो, जिसमें जो स्त्रियां जल भरने आवें उनके कुचोंकी परछाहीं मेरे ऊपर पड़े।

केशवकी कविता अर्थ गाम्भीर्यके लिये प्रसिद्ध है। किसी कविने कहा है:—

उत्तम पद कवि गंगके, उपमाको बलबीर।
केशव अर्थ गंभीरको, सूर त्रिविध गुण धीर॥

और भी कहा है—

कविता करता तीन हैं, तुलसी केशव सूर।
कविता खेती इन लुनी, शीला विनत मजूर॥

इनकी कविता कुछ कठिन भी है, शीघ्र हर एकके समझमे नहीं आती। इसीलिये लोग कहा भी करते हैं कि "कविको देन न चहत विदाई। पूछत केशवकी कविताई॥" तुलसीदासने इनको प्रेत-योनिसे उद्धार किया था।

५४ केशव और तुलसीदास।

इन्द्रजीतके प्रेत यज्ञ करनेके बाद केशवदास भी सबके साथ मर कर प्रेत हो गये थे। वह जिस कुएंमें बैठे थे उसीमें गोस्वामी तुलसीदासजी पानी भरने गये। केशवने उनका लोटा पकड़ लिया। गोस्वामीजीने लोटा छोड़नेके लिये बहुत कुछ कहा, तब इन्होंने कहा हमें प्रेत योनिसे छुड़ाओ तब लोटा छोड़ें। इसपर तुलसीदासजीने कहा तुम अपनी बनायी रामचन्द्रिकाके इक्कीस पाठ कर डालो तो तुम्हारी प्रेत योनि छुट जाय। केशव इसका पहिला छंद ही भूल गये थे। सो तुलसीदासने उन्हें वह याद दिलाया। तब वह रामचन्द्रिकाके इकोस पाठ करके मुक्त हुए।

५५ केशव और उन की पुत्रवधू।

केशवदासकी पुत्रवधू भी काव्य रचनामें निपुण थी। कहा जाता है कि केशवजीने अपने पुत्रको पहिले गीता पढ़ायी; जिसके कारण वह अपनी स्त्रीकी ओरसे विरक्त हो गया। पतिका यह भाव देख वह बहुत दुखी रहा करती थी। केशवजीके यहां एक

बकरा था । एक दिन उस बकरेको कुछ मस्तसा देख केशवकी पुत्रवधूने यह छन्द रचाः—

जैहै सबै सुधि भूलि तुम्हैं फिर भूलि न मोतन भूलि चितै है ।
एकको आंक बनाव्रत मेटत पोथी ए आंख लिये दिन जैहै ॥
सांची हौं भाषत मोहि ककाकी सौं प्रीतमकी गति तेरी हूं ह्वैहै ।
मोसौं कहा इठिलात अजासुत कैहौं बबाकी सौं तोहूं सिखै है ॥

बकरेको मस्तीसे विरत होनेके लिये उसने कहा—अरे बकरे तू इतना ऐंठता क्यों है ? यदि मैं ससुरजीसे कह दूंगी तो वह तुझे भी पाठा पढ़ा देंगे और तेरी भी वही दशा हो जायगी जो मेरे पतिकी हुई है । तू दिन रात पोथी पढ़नेमें लगा रहेगा, और तुझे भी अपनी स्त्रीसे विरक्ति हो जायगी । जब केशवने यह छन्द सुना तो बड़े लज्जित हुए और उसी दिनसे पुत्रको काव्य पढ़ाना आरम्भ किया; जिससे पुत्रकी चित्त-वृत्तिमें परिवर्तन हुआ, और अपनी स्त्रीकी ओरसे उसका विरक्तिभाव दूर हो गया । कहते हैं इसी समय केशवने रसिकप्रिया रची थी और अपने पुत्रको पढ़ायी थी ।

५६ लाल बुझक्कड़ और उनका काव्य ।

लाल अकबरके मंत्री राजा बीरबलके पुत्र थे । यह अपने पितासे भी अधिक हंसोड़ थे । पहलेसे ही इनके मनमें वैराग्य समाया था । यह संसारको मिथ्या और मानुषी बुद्धिको अल्पज्ञता समझते थे । सन १५८३ ई०में काबुलकी लड़ाईमें अपने

पिताके मरनेपर यह अपना सर्वस्व लुटा कर सन्यासी हो गये थे. लोग इनको बड़ा चतुर समझते थे ; पर यह लुकमान हकीमकी तरह अपनी बुद्धिको तुच्छ समझते थे। इनकी बनायी सैकड़ों पहेलियाँ देश भरमें प्रसिद्ध हैं ; जिनमें प्रत्येक इस बातकी प्रकाशक है कि गंभीर बातोंमें बड़े बड़े विद्वानोंकी बुद्धि वैसी ही होती है जैसी कि साधारण बातोंमें बौरे गंवारोंकी। लोग इन्हें चतुर समझकर बहुत बातोंमें इनकी सम्मति लिया करते थे। पर यह उटपटांग बातोंमें उसका उत्तर दे दिया करते थे। इन्होंने अपना नाम लाल बुझक्कड़ रख लिया था। इनकी कविताके दो नमूने नीचे लिखे जाते हैं:—

लालबुझक्कड़ बुझियां और न बुझै कोय।
पैरों चकी बांध कर हिरना कुद्दा होय॥ १॥
लाल बुझक्कड़ बुझियां और न बुझै कोय।
कड़ी बडंगा टारिके ऊपर हीको लोय॥ २॥

जिन प्रश्नोंके उत्तरमें यह बातें कही गयी हैं; उनकी कहानियां प्रायः सभी जानते हैं, इसलिये यहां नहीं लिखी गयीं।

५७ सुंदर कवि और उनकी कवितामें अगन।

सुन्दर कवि ग्वालियर निवासी ब्राह्मण थे। ये शाहजहां बादशाहके दरबारमें रहते थे। बादशाहने पहले इन्हें कविराय और पीछे महाकविरायकी पदवीसे विभूषित किया था। बादशाहकी आज्ञासे इन्होंने सं० १६८८ में "सुन्दरश्रृङ्गार" नामक

नायकाभेदका एक उत्कृष्ट ग्रन्थ बनाया है। स्वकीयाके उदाहरण में आपने यह छन्द बनाया था—

देखनि नैनके कोरनिलौं अधरानहीमें मुसक्यानको थानो।
बोलति बैनसो कंठहीमें चलते पगपै न कहूं अहटानो ॥
सुन्दर कोप नहीं सपने अरु जो भयो सो मनहीमें बिलानो।
मैं बसुधामें सुधाई सबै पर याकी सुधाई सुधाई है मानो ॥

इस छन्दमें यह अगन पड़ा था 'सुन्दर कोप नहीं सपने' अर्थात् सुन्दर कहते हैं कि इसे सपनेमें भी कोप (क्रोध) नहीं होता, और वाकछलसे दूसरा अर्थ यह निकलता है कि 'सुन्दरको पनहीं सपने' अर्थात् सुन्दरको सपनेमें पनहीं वा जूते। इस अगन-का यह प्रभाव हुआ कि कविजीको रोज रात्रिको सोते समय सपनेमें जूते पड़ने लगे। इस दुर्घटनासे वे बेचारे रोज-रोज सूखने लगे। एक दिन उनके किसी अन्तरङ्ग मित्रने उनकी यह हालत देखकर पूछा कि आप किस चिन्तामें दिनों दिन दुर्बल होते जाते हैं। सुन्दरजीने स्वप्नका सारा हाल अपने मित्रसे कह सुनाया। मित्रने कहा देखिये आपकी कवितामें कोई अगन तो नहीं पड़ा है। जब उन्होंने अपनी कविताकी जांच की तो इस छन्दपर उनकी दृष्टि पड़ी। जब उन्होंने 'कोप' के स्थानपर 'रोस' बैठा दिया तब जूते पड़ना बन्द हो गया, अब इसका पाठ ऐसा हो गया—'सुन्दर रोस नहीं सपने' इससे उनका अभीष्ट अर्थ भी रह गया, और अगन भी दूर हो गया।

५८ विहारी कवि और जैसिंह मिरजा ।

सुना जाता है कि आमेराधिपति सवाई जैसिंह अपनी नव-विवाहिता अल्प वयस्का रानीके रूप गुणमें ऐसे आसक्त हुए, कि सब राज काज देखना छोड़ दिया, और दिनरात रनिवासम उन्हींके पास रहने लगे। उन्होंने यह हुक्म भी दे दिया कि यदि कोई राज सम्बन्धी कामकी खबर मेरे पास लावेगा तो तोपदम करा दिया जायगा। इसी तरह जब एक वर्ष बीत गया, और राजमें बहुत उपद्रव होने लगा; तब मन्त्रियोंने सलाहकी कि ऐसी कोई युक्ति निकालनी चाहिये कि राजाका जी उधरसे फिर जाय। कविवर बिहारीलाल चौबे भी उस समय घूमते फिरते वहां आ गये, उन्होंने कहा कि मैं एक कविता बनाकर देता हूं; यदि उसे किसी तरह राजा तक पहुंचा दिया जाय, तो यकीन है कि उसे पढ़कर राजाको चेत हो। उन्होंने एक परचे पर यह दोहा लिख कर दिया:—

> नहिं पराग नहिं मधुर मधु नहिं विकास इहिकाल।
> अली कली ही सों बिंध्यो आगे कौन हवाल॥

रात्रिको राजाके लिये जो फूलकी चादर शय्यापर बिछानेको आया करती थी; उसीकी तहमें वह परचा बांध दिया गया। प्रातः काल जब फूल कुंभला गये और कागज राजाकी पीठमें गड़ा तो उन्होंने उसे निकालकर देखा और उस दोहेको पढ़ा। पढ़ते ही उन्हें चेत हो गया, और महलसे बाहर निकल कर दरबार किया।

राजाने हुक्म दिया कि जिसने यह दोहा लिखा है, मैं उससे बहुत प्रसन्न हूं, उसे मेरे पास हाजिर करो। बिहारीलाल बुलाये गये राजाने उनका बहुत सम्मान किया। उनको सात सौ मोहरें पारितोषिकमें दीं, और कहा कि आप जितने दोहे बनाकर लायेंगे प्रति दोहे पर आपको एक मोहर मिलेगी। चौबेजी तो मस्त आदमी थे; जब उन्हें खर्चेकी जरूरत होती तब पांच सात दोहे बनाकर ले जाते, और उतनी मोहरें लाकर आरामसे खाते और खर्च करते, इसी तरह जब सातसौ दोहे इकट्ठे हो गये तो एक ग्रन्थ तैयार हो गया, जिसका नाम सतसई पड़ा। इस ग्रन्थ रत्नकी जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी है। इतना छोटा ग्रन्थ बनाकर ही उन्होंने गागरमें सागर भरके दिखाया है, अब तक इसकी ५० से अधिक टीकाएं बन चुकी हैं और नित्य बनती जाती हे।

५९ बिहारी और जयशाह ।

एक समय दिल्लीपतिका कटक मारवाड़ाधीश अजीतसिंहपर चढ़ दौड़ा, और राजा भी लड़नेको तैयार हो गया। लड़ाई होने ही पर थी कि जयशाहने बीचमें पड़कर दोनों दलमें मेल करा दिया। बिना लड़े झगड़े दिल्लीपतिका कटक लौट गया और विद्रोह शान्त हो गया। जयशाहके इस कार्य्यकी प्रशंसा हिन्दू और मुसलमान दोनोंकी स्त्रियोंने की। बिहारीका यह दोहा इस ही घटनापर बना है—

घर २ तुरकनि हिन्दुअनि, आशिष देत सराहि।
पतिहि राखि चादर चुरी, पति राखी जयशाहि।

६० विहारी और महाराज जसवन्त सिंह।

सतसईकार विहारीलाल कविने अपनी सतसई जोधपुर नरेश महाराज जसवन्तसिंहको दिखायी और अपनी कविताके विषयमें उनकी सम्मति चाही। महाराजने उत्तर दिया कि "कविजी थारी कवितामें तो सूलो लाग गयो।" विहारी इस उत्तरसे बहुत खिन्न होकर अपने घर लौट आये। विहारीकी स्त्री जो बहुत चतुर थी, पतिको उदास देखकर पूछने लगी कि आज आप ऐसे उदास क्यों हैं? उन्होंने सारी घटना कह सुनायी, और कहा कि मैं समझता था कि महाराज कविताके बड़े मर्मज्ञ हैं, वे अवश्य मेरे ग्रन्थकी प्रशंसा करेंगे। पर उन्होंने कहा कि "थारी कवितामें सूलो लाग गयो।" स्त्री बोली उन्होंने ठीक ही कहा है। उनके कहनेका तात्पर्य यह है कि तुम्हारी कवितामें कीड़े पड़ गये अर्थात् जीव पड़ गये या जान आ गयी। तब विहारीको संतोष हुआ।

६१ विहारी और एक गवैया।

सतसईकार कविवर विहारीलाल किसी राजाके दरबारमें गये राजा कुछ गुणवान न था। दैवयोगसे एक बड़े गवैये भी उसी दरबारमें आ पहुंचे। गवैयेने बीन बजाकर बहुत अच्छा गाना राजाको सुनाया। ऐसा उत्तम गाना बजाना सुनकर भी राजा साहब जरा न रीझे। उनकी ऐसी उदासीनता देख गवैयेराम कुछ खिन्नसे जान पड़े। गवैयेकी यह अवस्था देख विहारीने उसे संबोधन कर यह दोहा कहा:—

तुम गायन गायन बड़े, यह गायन पर बीन।
यह गाहक करबीनके तुम लीने करबीन ॥

इसका अर्थ यह है कि तुम तो गवैयोंमें बड़े गवैये हो और यह हैं पुरानी गऊ। यह तो करबी (कुट्टी) के गाहक हैं, और तुम हाथमें बीन लिये हो। मसल प्रसिद्ध है कि "भैंसके आगे बीन बजी और भैंस खड़ी पगुराय।' गवैया विहारीके दोहेका तात्पर्य समझ वहांसे चलता बना, और दूसरे दिन विहारी भी उस खूसटका दरबार छोड़ अन्यत्र चले गये।

६२ विहारी और एक शरीर लड़का।

अमेराधिपति जयसिंहके समयमें वहाँ अर्थात् आमेरमें एक लड़का जब मार पीट करता तब हाकिमके यहां पकड़ा जाता और जूतियाँ खा कर निकलता तो फिर और भी शरारतसे अकड़ता। एकने उसे देख कर बिहारी लालसे पूछा कि इसका सबब क्या है? विहारीने नीचे लिखा दोहा सुनाया—

नीच हिये हुलसो फिरै, गहे गद के पोत।
ज्यों ज्यों माथे मारियत, त्यों त्यों ऊंचे होत ॥

६३ विहारी और एक चित्रकार।

एक समय कोई चित्रकार मिर्जाराजा जयसिंहके सामने एक चित्र बना कर लाया। चित्रमें यह दिखलाया गया था कि एक सांप, पंख फैलाये हुवे किसी मोरकी छायामें बैठा है, और एक सरोवर किनारे एक हिरन और एक बाघ एक ही जगह पानी पी

ई है। चित्रको देखकर महाराज बड़े प्रसन्न हुए और पास ही
ठे हुए विहारीसे इसपर एक कविता बनानेको कहा।

विहारी लालने यह दोहा बनाकर महाराजको सुना दिया—

कहलाने एकत रहत, अहि मयूर मृग बाघ।
जगत तपोवन सो कियो, दीरघ दाघ निदाघ॥

कहना न होगा कि चित्रकारने महाकवि कालीदासके बनाये
ऋतु संहारके इन दो श्लोकोंका आशय लेकर चित्र बनाया था—

रवेर्मयूखैरभितापितो भृशं,
विदह्य मानो पथि तप्त पांसुभिः।
अवाङ्मुखो जिह्म गतिः श्वसन्मुहुः
फणिर्मयूरस्य तले निषीदति॥ १॥

तृषा महत्या हत विक्रमोद्यमः
श्वसन्मुहुर्दूरविदारितानन।
नहन्त्यदूरेऽपि मृगान् मृगेश्वरो,
विलोल जिह्वश्चलिताग्र केसरः॥ २॥

६४ गिरधर कविराय और एक बनिआ।

अन्तरवेदके रहनेवाले गिरधर कविराय संवत् १८०० के
लगभग हुए हैं। कोई विरला ही हिन्दी जाननेवाला ऐसा होगा,
जो इनकी कुण्डलियोंसे परिचित न हो। इनकी कविता उपदेश-
पूर्ण और बड़ी ही हृदयग्राहिणी होती है। सिवा गोस्वामी तुल-
सीदासजीके और किसी कविकी कविता ऐसी लोकप्रिय नहीं
हुई, जैसी गिरधरकी। इन्होंने अन्यान्य कवियोंकीभांति बाल-

की खाल न उधेड़कर नित्यप्रति होने और दिखायी पड़नेवाली बातोंपर कविता की है। इनकी कविता सब कुंडलिया छन्दमें है। इनमें बहुतसी उक्तियाँ लोकोक्तियोंमें परिणत हो गयी हैं। इनकी—

'बीती ताहि बिसारि दे, आगेकी सुधिलेइ'।
'बिना बिचारे जो करै सो पाछे पछताय'॥

इत्यादि सूक्तियाँ रोजमर्राकी बोलचालमें शामिल हो गयी हैं। सुना जाता है, कि इन्होंने गिरधर सतसई नामसे ७०० कुण्डलियोंका ग्रन्थ बनाया है; परन्तु असल गिरधरकी कुण्डलियां १०० से अधिक देखनेमें नहीं आतीं। यद्यपि बहुत लोगोंने इनका नाम देकर भद्दी रचना करके इनकी कवितामें मिला दी है; पर उस बूंदसे भेट कहां? ऐसा भी कहा जाता है, कि ग्रन्थ पूरा होनेके पहले इनका देहान्त हो गया था। इसलिये अवशिष्ट कुण्डलियां इनकी स्त्रीने बनायी हैं। जैसे कृष्ण भगवानने सूरश्याम नाम देकर सूरदासके सवालाख भजन पूरे किये थे, उसी तरह इस स्त्रीरत्नने भी "साईं"की छाप देकर अपने पतिके संकल्पको पूरा किया था। इन्होंने जिस विषयका वर्णन किया, बहुत यथार्थ किया और निश्शङ्क होकर किया। यदि कोई इनकी सौ कुण्डलियां याद कर ले और उनके आदेशानुसार काम करे; तो किसीकी सलाह लेनेकी जरूरत न पड़े।

गिरधरके पड़ोसमें एक बनियां रहता था। उसीसे ये अपने भोजनका सामान लिया करते थे। बनिये अकसर चीज तौलमें

दिया करते हैं, वैसे ही वह भी करता था। एक दिन उन
अधिक सामान लेना था। इसलिये उन्होंने पहले ही बनिये
कविता सुनाकर सचेत कर दिया था:—

आटामें आटा घटै घटै दारमें दार।
जो कहुं घटिहै घीवमें हमसे ह्वै है रार॥
हमसे ह्वै है रार मार जूतिन जिउ लैहों।
जानै सकल जहान दाम एको ना दैहौं॥
कह गिरधर कविराय बैठिहौं तुम्हरे घाटा।
पनहिन मूड़ उठैहौं जो कहुं घटिहै आटा॥

इनकी स्त्रीकी कविताका भी एक नमूना देखिये, और इसे स
रखिये। इसमें कही हुई शिक्षाके अनुसार चलियेगा तो क
न खाइयेगा।

सांई ये न विरुद्धिये, गुरु, पण्डित, कवि, यार।
बेटा, बनिता, पौरिया, यज्ञ करावनहार॥
यज्ञ करावनहार, राजमन्त्री जो होई।
विप्र, परौसी, बैद, आपको तपै रसोई॥
कह गिरधर कविराय बात चतुरनके ताईं।
इन तेरह सों तरह दिये बनि आवै साईं॥

६५ भूषण और शिवाजी। (१)

शायद ही कोई हिन्दी-कविता-प्रेमी ऐसा होगा, जिसने भूषण
कविता न सुनी हो। यदि हम कहें कि हिन्दीमें वीररसव

कविता करनेमें इनके समान दूसरा कवि न हुआ, तो कुछ अत्युक्ति न होगी। ये महाशय कान्यकुब्ज त्रिपाठी तिकवाँपुर जि० कानपुरके रहनेवाले थे। इनके पिताका नाम रत्नाकर था। चिन्तामणि, मतिराम और नीलकण्ठ इनके सहोदर भाई थे। तीनो ही उत्कृष्ट कवि थे। एकबार ये अपनी भावजसे रुष्ट होकर घरसे निकल गये, और महाराज शिवाजीका नाम सुनकर घूमते फिरते उनके दरबारमें जा रहे थे। रास्तेमें एक मन्दिरमें इनकी शिवाजीसे भेंट हुई; परन्तु ये उन्हें पहिचान न सके। शिवाजीने इनसे पूछा 'तुम कौन हो और कहां जाते हो?' भूषणने कहा 'मैं कवि हूं और महाराज शिवाजीके दरबारमें जाना चाहता हूं।' महाराजने कहा 'शिवाजीके विषयम कोई कवित्त हमें भी सुनाओ।' उनके आग्रह करनेपर भूषणने तत्काल यह कवित्त रचकर सुनाया—

इन्द्र जिमि जंभ पर बाड़व सुअंभपर,
रावण सुदम्भपर रघुकुलराज हैं।
पौन बारिवाहपर शम्भु रतिनाह पर,
ज्यों सहस्रबाहु पर राम द्विजराज हैं।
दावा द्रुम दुण्डपर चीता मृगझुण्डपर,
भूषण वितुंड पर जैसे मृगराज हैं।
तेज तम अंसपर कान्ह जिमि कंसपर,
त्यों म्लेच्छ बंसपर शेर शिवराज हैं॥

महाराजने कहा फिर कहो, उन्होंने पुनः इस कवित्तको पढ़ा। इसी तरह शिवाजीने ५२ बार यह कवित्त पढ़वाया और उनको

५२ लाख रुपये ५२ हाथी और ५२ गाँव पुरस्कारमें दिये। शिवाजीने बड़े सम्मानके साथ उन्हें अपना राजकवि बनाया।

६६ भूषण और शिवाजी। (२)

औरंगजेब शिवाजीको पकड़नेकी बहुत कोशिश करता था; परन्तु वे किसी तरह हाथ न आते थे। अन्तको आमेराधिपति सवाई जयसिंह (मिरजा राजा) उनको अपनी जिम्मेदारीपर दरबारमें ले आये। यह बात सन् १६६६ ई०की है। औरंगजेब भलीभांति जानता था, कि शिवाजी मेरे सामने कभी सिर न झुकायेगा। इसलिये उसने दरबारका फाटक बन्द करवा दिया और खिड़की खुलवा दी। उसने समझा था कि खिड़कीकी राह भीतर आनेके लिये उसे अवश्य सिर सामने झुकाना पड़ेगा। शिवाजी उसकी इस कूटनीतिको समझ गये। उन्होंने पहले खिड़कीके भीतर अपना पांव रखा, फिर पीछेकी तरफ मुड़कर अन्दर चले गये। बादशाहने इसमें अपना अपमान समझा, और उन्हें नज़रकैद कर लिया। शिवाजी जयसिंहकी सहायतासे बड़े कौशलके साथ कैदसे निकल गये। उस समय दिल्लीमें बड़ा आतंक फैला हुआ था। जब शिवाजी अपनी राजधानीमें, पहुंचे तब भूषण कविने उनकी प्रशंसामें यह कवित्त पढ़ाः—

प्रबल प्रचण्ड बरिबण्ड दौरदण्ड रिपु,
खण्डनको मण्डल घमण्ड नभ छायो है।
राजनको राज छिति छत्रिनको छत्रपति,

नवल नछत्री महीमण्डलमें गायो है ॥
भूषण भनत जाकी सहज तयारी सुनि,
दिल्ली हलकंप देश देशन जतायो है ।
जाही दरबारमें मुड़ायी और राजनने,
तामें शिवराज ही मरोर मूछ आयो है ॥

महाराज इसे सुन बहुत प्रसन्न हुए, और कविको बहुतसा इनाम दिया ।

६७—भूषण और सम्भाजी ।

शिवाजीके पुत्र सम्भाजी कविकोविदोंके आश्रयदाता थे। आप स्वयं भी हिन्दीके एक अच्छे कवि थे । आप शम्भु तथा नृ शम्भुके नामसे कविता करते थे । इनके बनाये नखसिख और नायका भेदके बड़े टकसाली छन्द मिलते हैं । भूषणने उनकी प्रशंसाका यह कवित्त बनाकर बहुत दान और सम्मान पाया था—

सारससे सूबा कर बानकसे साहिजादे,
मोरसे मुगल मीर धीरमें धचै नहीं ।
बगुलासे बलख बलूच और बदखशान,
काबुली कुलंग ताते रणमें रचै नहीं ॥
भूषनजू खेलत सितारेमें सिकार सम्भा,
सिवाको सुवन तात दुवन बचै नहीं ।
बाजि रही बाजकी चपेटैं चंग चहूं ओर,
तीतर तुरक दिल्ली भीतर बचै नहीं ॥

आश्चर्य है, कि इस कवित्तमें सम्भाजीका नाम और सिवाका

सुवन रहनेपर भी लोग इसे शिवाजीकी प्रशंसामें कहते हैं। यदि "शम्भा" की जगह "सिवा" और "सिवाको सुवन" की जगह "साहको सुवन" पाठ हो तो शिवाजीका हो सकता है।

६८—भूषण और साहूजी।

संवत् १७७२ के लगभग जब महाराज साहूजीने उत्तरका धावा किया था, उस समय भूषणकी अवस्था ८० वर्षकी थी; पर उनमें उद्दण्डता वही भरी हुई थी। उस समय उन्होंने साहूजीकी प्रशंसामें यह कवित्त बनाया था:—

> बलख बुखारे सुलतान लौं हहर पारे,
> कपि लौं पुकारे कोऊ धरत न सार है।
> रूम रूंदि डारे, खुरासान खूंदि मारे खाव,
> खादर लौं झारे ऐसी साहुकी बहार है॥
> कक्कर लौं बक्खर लौं मक्कर लौं चले जात,
> टक्कर लिवैया कोऊ वार है न पार है।
> भूषण सिराज लौं परावने परत फेरि,
> दिल्लीपर परत परिंदनकी छार है॥

इसपर साहूजीने प्रसन्न होकर उनका बहुत सम्मान किया था।

भूषणजीको हिन्दू जातीयताका बड़ा ध्यान रहता था। ये बड़े ही प्रभावशाली कवि हो गये हैं। इनके जैसा धन और मान किसी भी कविने न पाया। ये भी केशवदासजीकी तरह राजाई ठाठबाटसे रहते थे।

६९—भूषण और मतिराम ।

कोई चित्रकार शिवाजीका एक चित्र बनाकर उनके समीप लेगया। उसका मूल्य उसने एक लाख रुपये मांगा। शीवाजी-को वह चित्र पसन्द न आया; इसलिये उसे न लिया। चित्रकार वह चित्र औरंगजेब बादशाहके पास ले गया। औरंगजेब तो शिवाजीसे द्वेष रखता ही था, उसने एक लाख रुपया देकर वह चित्र खरीद लिया, और हुक्म दिया कि 'इसे मेरे पैखानेमें लटका दो।' मतिरामजी औरंगजेबके दरबारमें और उनके बड़े भाई भूषणजी शिवाजीके दरबारमें रहते थे। एकबार जब दोनो भाइयोंकी भेंट हुई, तब मतिरामने भूषणसे परिहास करते हुए कहा कि 'तुम्हारे राजाका चित्र हमारे बादशाहने पैखानेमें लगा रखा है।' भूषणने जवाब दिया कि 'तुम्हारे बादशाहको कबजीयतकी बीमारी है, जब वह हमारे राजाका चित्र देखते हैं, तब उनका दस्त निकल आता है।' मतिराम यह जवाब सुनकर बहुत लज्जित हुए।

मतिरामका औरंगजेबके दरबारमें रहनेका कोई प्रमाण नहीं मिलता। हां, उनके सबसे बड़े भाई चिन्तामणिजी उस दरबारमे पहुंचे थे। शायद उन्हींसे यह बातचीत हुई हो। मैंने बाल्याव-स्थामें इस विषयका एक कवित्त सुना था; जिसमें भूषण और मतिरामका ही नाम था। परन्तु इस समय मुझे वह याद नहीं है।

७०—भूषण और औरंगजेब ।

महाकवि भूषण प्रातः स्मरणीय महाराज शिवाजीके राज-

कवि थे। इनके बड़े भाई चिन्तामणि भारत सम्राट औरङ्गजेबके आश्रित कवि थे। एकबार भूषण अपने बड़े भाई चिन्तामणिसे मिलनेको दिल्ली गये। यह समाचार पाकर औरंगजेबने इनको अपने दरबारमें उपस्थित होनेको चिन्तामणिके द्वारा कहला भेजा। इसपर भूषणने बादशाहको कहला भेजा कि 'मैं आपके परम शत्रु शिवाका गुण गायक कवि हूं। उन्हीं (शिवा) की प्रशंसामें मेरे बनाये छन्द सुनकर आप अप्रसन्न हो जायेंगे।' इसपर बादशाहने कहला भेजा कि 'कुछ परवा नहीं, मैं रञ्ज न मानूंगा।'

दूसरे दिन भूषण शाही दरबारमें आ उपस्थित हुए। सत्कार पा चुकनेपर बादशाहकी आज्ञासे भूषणने शिवाकी प्रशंसात्मक अपनी कविताएं सुनायीं। इसपर कोई दूसरा कवि बोल उठा—

'नौरंग (औरंगजेब) सार्वभौम राजा हैं, और शिवाजी मांडलिक हैं, फिर इनके आगे दूसरोंकी बड़ाई क्या?'

इसपर भूषणने तत्काल निम्न लिखित दो छन्द कहे—

कूरम कमल, कमधुज है कदम फूल,
गौर है गुलाब, राना केतकी विराज है।
पाँड़रि पंवार, जूही सोहत हैं चन्द्रावल,
सरस बुन्देला सो चमेली साज बाज है॥
भूषन भनत मुचकुन्द बड़ गूजर है,
बघेले बसन्त सब कुसुम-समाज है।
लेइ रस एतनको बैठि न सकत अहै,
अलि नवरंगजेब चम्पा शिवराज है॥ १॥

राना भौ चमेली और बेला सब राजा भये,
ठौर ठौर रस लेत नित यह काज है ।
सिगरे अमीर आनि कुन्द होत घर घर,
भ्रमत भ्रमर जैसे फूलनकी साज है ॥
भूषन भनत शिवराज बीर तैंही देस,
देसनमें राखी सब दच्छिनकी लाज है ।
त्यागे सदा षटपद पद अनुमानि यह,
अलि नवरंगजेब चम्पा शिवराज है ॥ २ ॥

इसपर बादशाहको क्रोध तो अवश्य हुआ; पर अपनी प्रतिज्ञा-पर ध्यान देकर भूषणको यथोचित सम्मानके साथ विदा किया, और यह खबर जब शिवाजीने पायी तो भूषणको और विशेष रूपसे पुरस्कृत किया ।

७१—भूषण और उनकी भावज (१)

भूषण कवि पहले कुछ पढ़े लिखे न थे । उनके बड़े भाई चिन्तामणि त्रिपाठी औरंगजेब बादशाहके दरबारमें नौकर थे । भूषण घरमें ही रहते थे, और अपने भाईकी कमाईपर बसर करते थे ।

एक बार बटसावित्रीके दिन सब स्त्रियां बटवृक्ष पूजने गयीं । वहां भूषणकी स्त्रीने अपनी जिठानी (चिन्तामणिकी स्त्री) से पूजामें चढ़ानेके लिये एक पैसा मांगा । जिठानीने झल्लाकर कहा कि 'पैसा कहांसे आवे तेरा पति तो एक डली नोनकी भी कमा

कर नहीं ला सकता।' भूषणकी स्त्री इस तानेसे बहुत लज्जित तथा दुःखित हुई, और घर आकर अपने पतिसे सब हाल कहा, जिससे भूषणको बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि 'जब कमाई करके लावेंगे तभी घरमें भोजन करेंगे।' कहते हैं कि भूषण जब शिवाजीके दरबारमें गये, तो पहले उन्हें जो पारितोषिक मिला, उसमसे लाख रुपयेका नोन खरीदकर अपनी भावजको भेज दिया।

७२—भूषण और उनकी भावज (२)

एक बार भूषणजी गऊको खिलानेके लिये घासका गट्ठर सिरपर रखे घर आ रहे थे। द्वारपर इनकी भावज पांव पसारे बैठी थी। भूषणने कहा, "रास्तेसे हट जाओ।" इसपर भावजने ताना मारा कि 'ऐसा जान पड़ता है कि हाथी लादे चले आते हैं।' यह बात भूषणको तीर सी लगी। उन्हें कुछ विद्या तो आती ही न थी। उन्होंने सरस्वतीकी आराधना की, और कुछ ही दिनोंमें सरस्वती सिद्ध हो गयी। यह बड़े भारी कवि हो गये। जब शिवाजीके यहांसे हाथी इनाममें मिले तो इन्होंने कई हाथी रुपयों-से लादकर अपनी भावजके पास भेज दिये।

७३—भूषण और छत्रसाल

भूषण कवि एकबार पन्ना पहुंचे। उस समय राजा छत्रसाल वहांके अधीश्वर थे। वे पहिले ही जानते थे कि कविजी, शिवाजी, उनके पुत्र शंभाजी, और तत्पुत्र शाहूजी द्वारा अमित द्रव्यादिसे

राना भौ चमेली और बेला सब राजा भये,
ठौर ठौर रस लेत नित यह काज है ।
सिगरे अमीर आनि कुन्द होत घर घर,
भ्रमत भ्रमर जैसे फूलनकी साज है ॥
भूषन भनत शिवराज बीर तैंही देस,
देसनमें राखी सब दच्छिनकी लाज है ।
त्यागे सदा षटपद पद अनुमानि यह,
अलि नवरंगजेब चम्पा शिवराज है ॥ २ ॥

इसपर बादशाहको क्रोध तो अवश्य हुआ; पर अपनी प्रतिज्ञा-पर ध्यान देकर भूषणको यथोचित सम्मानके साथ विदा किया, और यह खबर जब शिवाजीने पायी तो भूषणको और विशेष रूपसे पुरस्कृत किया ।

७१—भूषण और उनकी भावज (१)

भूषण कवि पहले कुछ पढ़े लिखे न थे। उनके बड़े भाई चिन्तामणि त्रिपाठी औरंगजेब बादशाहके दरबारमें नौकर थे। भूषण घरमें ही रहते थे, और अपने भाईकी कमाईपर बसर करते थे ।

एक बार बटसावित्रीके दिन सब स्त्रियां बटवृक्ष पूजने गयीं। वहां भूषणकी स्त्रीने अपनी जिठानी (चिन्तामणिकी स्त्री) से पूजामें चढ़ानेके लिये एक पैसा मांगा। जिठानीने झल्लाकर कहा कि 'पैसा कहांसे आवे तेरा पति तो एक डली नोनकी भी कमा

कर नहीं ला सकता।' भूषणकी स्त्री इस तानेसे बहुत लज्जित तथा दुःखित हुई, और घर आकर अपने पतिसे सब हाल कहा, जिससे भूषणको बड़ी ग्लानि हुई। उन्होंने प्रतिज्ञा की, कि 'जब कमाई करके लावेंगे तभी घरमें भोजन करेंगे।' कहते है कि भूषण जब शिवाजीके दरबारमें गये, तो पहले उन्हें जो पारितोषिक मिला, उसमेंसे लाख रुपयेका नोन खरीदकर अपनी भावजको भेज दिया।

७२—भूषण और उनकी भावज (२)

एक बार भूषणजी गऊको खिलानेके लिये घासका गट्ठर सिरपर रखे घर आ रहे थे। द्वारपर इनकी भावज पांव पसारे बैठी थी। भूषणने कहा, "रास्तेसे हट जाओ।" इसपर भावजने ताना मारा कि 'ऐसा जान पड़ता है कि हाथी लादे चले आते है।' यह बात भूषणको तीर सी लगी। उन्हें कुछ विद्या तो आती ही न थी। उन्होंने सरस्वतीकी आराधना की, और कुछ ही दिनोंमें सरस्वती सिद्ध हो गयी। यह बड़े भारी कवि हो गये। जब शिवाजीके यहांसे हाथी इनाममें मिले तो इन्होंने कई हाथी रुपयों-से लादकर अपनी भावजके पास भेज दिये।

७३—भूषण और छत्रसाल

भूषण कवि एकबार पन्ना पहुंचे। उस समय राजा छत्रसाल वहांके अधीश्वर थे। वे पहिले ही जानते थे कि कविजी, शिवाजी, उनके पुत्र शंभाजी, और तत्पुत्र शाहूजी द्वारा अमित द्रव्यादिसे

यथेष्ट पुरस्कृत हो चुके हैं । मैं इनको इससे अधिक और क्या दे सकता हूं !' यह विचारकर उन्होंने कहारोंके साथ मिलकर उनकी पालकीको अपने कंधेपर उठा लिया । भूषणको जब यह बात ज्ञात हुई, तो तुरत पालकीसे उतर पड़े, और राजाकी प्रशंसामें यह कवित्त पढ़ाः—

राजत अखंड तेज छाजत सुयस बड़ो,
गाजत गयंद दिग्गजन हिये सालको ।
जाहिके प्रतापसों मलीन आफताब होत,
ताप तजि दुर्जन करत बहु ख्यालको ॥
साजि सज गज तुरी कोतल कतारें दीन्हें,
भूषन भनत ऐसो दीन प्रतिपाल को ?
और राव राजा मन एकहून ल्याऊं अब,
साहूको सराहौं की सराहौं छत्रसालको ॥

भूषणजी अपने भाई मतिरामके अनुरोधसे एक बार बून्दी नरेश राव राजा बुद्धसिंहके दरबारमें भी गये थे; परन्तु वहां इनका यथेष्ट सत्कार न हुआ था । इसलिये वह राव राजापर असंतुष्ट थे । इस कवित्तमें इस विषयपर भी कटाक्ष किया गया है ।

७४ भूषण और उनकी कवितामें अगन

कहा जाता है कि भूषण कविने शिवाजीकी प्रशंसामें एक छंद बनाया था; जिससे शिवाजीपर वाकछल पड़ा था । उनकी कई लड़ाइयोंमें हार हुई, और उन्हें बहुत क्षतिग्रस्त होना पड़ा था । वह कवित्त यह है:—

दुग्गपर दुग्ग जीते सरजा शिवाजी गाजे,
उग्गपर उग्ग नाचे रुण्ड मुण्ड फरके।
भूषन भनत तेरे जीतके नगारे बाजे,
सारे करनाटी भूप सिंहलको सरके॥
मारे सुनि सुभट पनारे भारे उद्भट,
तारे लागे फिरन सितारे गढ़धरके।
बीजापुर बीरनके गोलकुंडा धीरनके,
दिल्ली उर मीरनके दाड़िमसे दरके॥

इस कवित्तमें यह अगम पड़ा है 'तारे लागे फिरन सितारे गढ़धरके' जिसका अर्थ यह निकलता है, कि सितारेके राजाके तारे फिरने लगे अर्थात् उनके शुभ नक्षत्र विपरीत पड़ने लगे।

७५—मतिराम और कुमायूं नरेश

कुमायूं नरेश महाराज उद्योतचन्द बड़े उदार और साहित्य-प्रेमी थे। आपके आश्रयमें सैकड़ों कवियोंका प्रतिपालन होता था। वह कवियोंसे बड़ी शिष्टतापूर्वक मिलते थे। इसलिये आश्रित और आश्रयदाताके बीच जो कुछ भयका प्राधान्य रहता है, वह इनके दरबारमें बिलकुल न था। कुछ उद्दण्ड कवियोंने इस स्वच्छन्दताका दुरुपयोग किया, और अशिष्टतापूर्वक खुले दरबारमें अपने उद्धत स्वभावका परिचय देने लगे। महाराजने इसमें अपना अपमान समझा। कई बार मना करनेपर भी जब कुछ कवियोंने अपनी उद्दण्डता नहीं छोड़ी, तो एक दिन उन्हें बहुत क्रोध चढ़

आया, और सब कवियोंको राजदरबारसे निकलवा दिया, और अपने राज्यसे बाहर चले जानेकी आज्ञा दी। अब तो कवियोंकी सब उद्दण्डता भूल गयी; पर डरके मारे महाराजके सामने न जा सकते थे। सौभाग्यसे उन्हीं दिनों घूमते-फिरते महाकवि मतिराम-जी आ गये। इनको आया जान कवियोंके जीमें-जी आया। उन्होंने मतिरामजीको सब हाल कहा। इन्होंने कवियोंको बहुत फटकारा। फिर महाराजसे भेंट की और नीचे लिखा छन्द सुना-कर उनका क्रोध शांत किया, और क्षमा प्रार्थना कराकर कवियों-को फिर दरबारमें आनेकी आज्ञा दिलवायी।

करनके विक्रमके भोजके प्रबंध सुनो,
कैसी भांति कविनको आगे लीजियतु है।
कवि मतिराम राजसभाके सिंगार हम,
जाके बैन सुनत पीयूष पीजियतु है॥
एकने गुनाह नरनाह श्रीउदोतचन्द,
कविनपै एतो कहा रोष भीजियतु है।
काहू मतवारे एक आंकुस न मानो तौ,
दुरद दरबारते न दूर कीजियतु है॥

७६—मतिराम और जयपुर नरेश

कहते हैं कि महाकवि मतिरामने जयपुर नरेशकी आज्ञासे 'रसराज' बनाना आरंभ किया। महाराजने उस ग्रन्थपर एक लाख रुपया देनेका वचन दिया था। मतिरामजी ग्रन्थ सम्पूर्णकर

महाराजके पास ले गये। महाराजने कहा कि कविजी, इसमें आप पचास हजार रुपये लीजिये। कविने कहा, 'क्यों मुझे तो एक लाख रुपये मिलनेका वचन दिया गया था।' इसपर महाराजने कहा, "आजकल तो पचास हजार देनेवाले भी आपको न मिलेंगे।" इसपर मतिरामने क्रुद्ध हो यह कहकर कि "तो पचास हजार छोड़नेवाले भी कवि आज कल नहीं मिलेंगे" जिनमें पन्नोंमें महाराजकी वंशावली वर्णन की थी, उनमें पन्ने फाड़कर फेंक दिये, और घर चले आये। फिर साग्रह जयपुर नरेशके बुलानेपर भी उनके यहां नहीं गये।

मतिरामजीके अन्य सभी ग्रन्थ किसी न किसी राजाके नाम पर समर्पित है। पर 'रसराज' किसीके नामसे अर्पित नहीं है। इससे भी उपरोक्त घटनाकी सत्यता सिद्ध होती है। रसराज आशीर्वादात्मक ग्रन्थ है। मतिरामने स्वयं कहा था, जो कोई सिर्फ रसराज पढ़ेगा, वही कवि हो जायगा।

७७—मतिराम और भोजजी बूंदी।

भोजजी बून्दीके राजराजा सुरजानके पुत्र थे। पिताकी मृत्युके बाद यह बूंदीके सिंहासनपर बैठे। यह दिल्लीश्वरके करद राजा थे। एकबार अपनी परम प्यारी एक हिन्दू-बेगमके मर जानेपर बादशाहने हुक्म दिया कि सब लोग शोक प्रकट करनेके लिये अपनी अपनी दाढ़ी मूंछ मुड़वा डालें। किसी अधीनस्थ हिन्दू नरेशका ताब ही नहीं हुआ कि बादशाहको इस

नुचित आज्ञाका प्रतिवाद करे। सबने शाही हुक्म मान लि
व राजा भोजको जब मालूम हुआ, तो इन्होंने इस आ
ननेसे स्पष्ट अस्वीकार कर दिया ; क्योंकि यह साहसी
पनी धुनके पक्के थे। बादशाह भी इनकी इस कार्रवाईप
ा रह गये। इसी विषयपर मतिरामने दो छन्द बनाये हैं-

जेते पैंड़दार दरबार सरदार सब,
ऊपर प्रताप दिल्लीपति को अभंग भौ।
मतिराम कहै करबारके कसैया केते,
गाड़रसे मुड़े जग हाँसीको प्रसंग भौ॥
सुरजन सुत राज लाज रखवारो एक,
भोज ही ते साहको हुकम पग भंग भौ।
मूंछन सों राव-मुखलाल रंग देखि मुख,
औरनको मूंछन बिना ही श्यामरँग भौ
दारुन तेज दिलीसके बीरन,
काहू न बस के बाने बजाये।
छोड़ि हथ्यारन हाथन जोरि,
तहां सब ही मिलिमूंड़ मुड़ाये॥
हाड़ा हठी रह्यौ पैंड़ किये,
मतिराम दिगंतन मैं जस छाये।
भोजके मूंछनि लाज रहीमुख,
और निलाजके भार नवाये॥ २॥

———:———

७८—लालकवि और छत्रशाल ।

गोरेलाल उर्फ लालकवि पन्नानरेश छत्रशाल बुंदेलेके यहां रहते थे। इन्होंने उक्त महाराजके आज्ञानुसार उनके जीवन चरित्रका "छत्र प्रकाश" नामक बहुत विशद ग्रन्थ बनाया है। एक बार इन्होंने महाराजके दानकी प्रशंसाका निम्नलिखित कवित्त बनाकर एक लाख रुपया इनाम पाया था—

अच्छत दूरभयुत तरल तरंगिनि सों,
कौ है तू कहाँ ते आई रची ज्योंत सारीके।
सरिता हों संकलप सलिल बहत आवें,
महाराज छत्रशाल दान-व्रत-धारीके॥
देखि क्यों गुमान कीन्हों, मोहि ना प्रनाम कीन्हों,
लाल बोली बचन अनख भेद भारीके।
महादानी पानितें उपज मेरी गंगे सुन,
पाँयन ते कढ़ी तू तो बावन भिखारीके॥

यह कवित्त दानवीरका बहुत उत्कृष्ट उदाहरण है। इसका अर्थ यह है, कि अक्षत और दूर्वा सहित तरल तरंगसे भरी सरिताको देख कर गंगाने पूछा कि 'तू कौन है और कहांसे आयी है?' उत्तर दिया कि 'मैं दानी महाराज छत्रशालके छोड़े हुए संकल्प-जलकी सरिता हूं।' गंगाने कहा 'तूने मुझे देख अभिमान क्यों किया और मुझे प्रणाम क्यों न किया?' तब उसने अनखाकर गम्भीरता भरे बचनोंमें कहा—'सुन गंगे! मेरी उत्पत्ति महादानीके

ाथसे है, और तू ना भिखारी बामन (विष्णु)के पैरसे उत्पन्न हुई है, इस लिये तू मुझसे ऊंची नहीं हो सकती, जो मैं तुझे प्रणाम करती ।

७६—उड़छा नरेश और छत्रशाल ।

एक समय उड़छाके राजाने ठट्ठेके तौरपर छत्रशालको लिखा कि "उड़छाके राजा और दुनियाके राई । अपने मुंह छत्रशाल बनत भनवाई ।" तब छत्रशालने निम्नस्थ कवित्त लिखकर उनके पास भेज दिया—

सुदामा तन हेर्यौ तब रंक हूं ते राव कीन्हों,
बिदुर तन हेर्यो तब राज दियो चेरे तें ।
कुबरी तन हेर्यौ तब सुन्दर सरूप दीनों,
द्रौपदी तन हेर्यौ तब चीर बाढ़्यौ टेरे तें ।
कहत छत्रसाल प्रहलादकी प्रतिज्ञा राख्यो,
हरनाकस मार्यो नेक नजरके फेरेतें ।
ऐरे अभिमानी गुरुवानी भये कहा होत,
नामी नर होत गरुड़ गामीके हेरेतें ॥

८०—छत्रशाल और बाजीराव पेशवा ।

जब सन १७३२ ई०में फर्रुखाबादका गवर्नर मुहम्मदखां बंगश छत्रशालको पराजितकर उनका सारा देश उजाड़ने लगा, तब छत्रशालने (जो बयासी वर्षके बूढ़े हो गये थे) पेशवा बाजीराव को एक पत्रमें यह दोहा लिखकर भेजा था:—

जो गति ग्राह गजेन्द्रकी, सो गति जानहु आज ।
बाजी जात बुन्देलकी, राखो बाजी लाज ॥

इसपर बाजीराव पेशवाने वृहत सेना भेजी; जिसकी सहायतासे छत्रशालने बंगशको परास्त किया। छत्रशालने इस उपकारके बदले अपना एक तिहाई राज्य पेशवाको दे दिया, और शेष दो तिहाई अपने २७ लड़कोंमें बांट दिया। सन् १७३४ में इनका देहांत हुआ।

८१—भगवत कवि और निवाज।

पन्नानरेश महाराज छत्रशाल कविकोविदोंके आश्रयदाता थे उनके दरबारमें बहुतसे कवियोंका प्रतिपालन होता था। उन्हींमें भगवत और निवाज भी थे। निवाज कवि मुसलमान थे। एक दिन भगवत कविने निवाजको खिझानेके लिये महाराज छत्रशालको सम्बोधनकर सभामें यह दोहा पढ़ा—

तुम्हें न ऐसो चाहिये, छत्रशाल महराज।
जहँ भगवत गीता पढ़ै, तहं कवि पढ़ै निवाज॥

महाराज यह श्लेषोक्ति सुनकर बड़े प्रसन्न हुए, और भगवतको बहुतसा इनाम दिया।

किसी किसीका अनुमान है, कि भगवतके स्थानपर निवाजकी नियुक्ति होनेपर भगवतने यह दोहा राजाको अरजीमें लिखकर दिया था।

८२—हरिकेस और जगत सिंह।

हरिकेस कवि बुन्देलखण्डी पन्नानरेश छत्रशालके दरबारमें

रहते थे। तत्पश्चात् उनके पुत्र जगतसिंहके पास रहने लगे। इन्होंने वीररसकी बड़ी जोरदार कविता की है। एक दिन महाराजकी प्रशंसामें निम्नलिखित कवित्त सुनाकर इन्होंने सवा लाख रुपये पारितोषिक स्वरूप पाये थे:—

> छवैला कालकूट तैं लचाई तेज बाड़वके,
> सेस फूंक धमनि प्रचण्डताई चढ़ी है।
> आई आसमानत सुभासमान सान पाई,
> प्रलै पानीमें बुझाई पैनीधार कढ़ी है॥
> हरिकेस हरको त्रिशूल हरिचक्र पास,
> बैरीवर बधिबेको भली विधि पढ़ी है।
> महाराज भूप जगतेस जू तिहारी तेग,
> बज्रके हथौरा काल कारीगर गढ़ी है।

जब चुगलोंने हिंसावश निहाईकी बाबत सवाल किया, तब कविजीने चुगल की चाँद बतायी। इतना सुन चुगलोंके मुँहपर तो एकदम स्याही फिर गयी, और महाराजने प्रसन्न होकर पुनः दस हजार रुपये इनाम दिये।

कहते हैं, कि हरिकेसजी अफीम बहुत खाते थे। सभी जानते हैं, कि अफीमची मिष्टान्नके बड़े प्रेमी होते हैं। एक दिन वे महाराजकी प्रशंसामें यह कवित्त सुनाने लगे:—

> काहेको सजत सैन ठक्करको टेक कर,
> नेक तो रहन दे अरिन प्रान आसासी।

कहैं हरिकेस जगतेस तेरे त्रासहोते,

परीसी रहत साह फौजनको नासाली ।

इतना कहकर जो उन्हें पिनकमें मीठेकी चाट याद आयी तो उसीकी झोंकमें नीचे लिखे दो चरण कहकर कवित्तकी पूर्त्ति की:-

पेरासे पहार सुखपुरी सी पुहुमि, मिटि,

जैहै सेस कुण्डली जलेबीके तमासासी ।

खांड़की गंडेरीसी कड़क जैहै कोल दाढ़,

जैहैरे कमठ पीठ मसकि बतासा सी ॥

कहनेकी आवश्यकता नहीं, कि यह बीररसका बहुत जोरदार कवित्त है, और इसमें अत्युक्ति अलङ्कारकी पराकाष्ठा दिखायी गयी है ।

८३—घनश्यामकवि और रीवांनरेश ।

असनी निवासी घनश्याम शुक्ल रीवांनरेशके यहां रहते थे। एक दिन महाराजने उन्हें यह समस्या पूर्तिके लिये दी:—"सुधा-रस पीजिये" और कहा कि इसमें क्रमसे बारहों राशिके नाम लिखने चाहिये । कविजीने तत्काल यह कवित्त पढ़ सुनाया:—

मेष हो रहीरी आली वृषमति तेरी भई,

मैथुनके काज नो हमारी कान कीजिये ।

करक मिटाओ आछे सिंहके गुनन धाओ,

कन्याके सुभाव तो तुरत तज दीजिये ॥

तुला तुल अतुल हो वृश्चिक के विष हूं तें,

धन घनश्याम जूके चरण गहि लीजिये ।

मकर न कीजे आछे कुम्भके गुनन हूजा
मीन गत माधो जूसों सुधारस पीजिये ॥

८४—लोकनाथ और उनकी स्त्री ।

कवि लोकनाथ चौबे बूंदीके रावराजा बुद्धसिंहके यहां रहते थे । एक बार दिल्लीके बादशाहके हुक्मसे रावराजा काबुल जानेको हुए, तो कविजीको भी साथ चलनेकी आज्ञा दी । उनकी स्त्रीने जब यह बात सुनी, तो निम्नलिखित कवित्त बनाकर उनके पास भेज दिया:—

मैंनो यह जानी ही कि लोकनाथ पाये पति,
संग ही रहौंगी अरधंग जैसे गिरजा ।
एते पै विलच्छन है उत्तर गमन कीन्हों,
कैसेकै मिटत जो वियोग विधि सिरजा ॥
अब तो जरूर तुम्हें अरज किये ही बनै,
वेऊ द्विज जानि फरमाय हैं कि फिरजा ।
जोपै तुम स्वामी:आजु अटक उलंघि जैहो,
पाती माहिं कैसे लिखूं मिश्र मीर मिरजा ॥

जब लोकनाथजीने इसे रावराजाको दिखाया, तो उन्होंने काबुल जानेसे इनकी रिहाई कर दी ।

८५—रावबुद्ध और दिल्लीके बादशाह ।

रावबुद्ध हाड़ा बून्दी नरेश कविकोविदोंके आश्रयदाता थे । वे स्वयं भी कविता करते थे । बहादुर शाह बादशाहके यहां

इनकी बड़ी इज्जत थी। जब सैयद भ्राता बादशाह फर्रुखसियरको बेदखल कर आप ही गली कूचोंमें बादशाही नकारा बजाते हुए घूमने लगे; तब भला इन सूरवीर महाराजसे कब रहा जाता था। उस समय उन्होंने निम्नलिखित कवित्त बनाया था:—

ऐसी ना करी है काहू आजुलौं अनसी जैसी,
सैयद करी हैं ये कलंक काहि चढ़ैंगे॥
दूजेको नगाड़े बाजै दिलीमें दिलीश आगे,
हम सुनि भागैं तो कविंद कहा पढ़ैंगे॥
कहै राव बुद्ध हमैं करने हैं युद्ध स्वामि-
धर्ममें प्रबुद्ध जेत जात यश मढ़ैंगे॥
हाड़ा कहवाय कहा हारि करि कढ़ैं तातें,
भारि शमशेर आजु रारि करि कढ़ैंगे॥

८६—देव और उनकी कविता।

देवदत्त उपनाम देवका जन्म संवत् १७३० में हुआ था। यह सनाढ्य ब्राह्मण थे, और इटावा नगरमें रहते थे। इन्होंने कविताके बावन ग्रन्थ बनाये, जिससे लोग इन्हें "बावन ग्रन्थी" कहते हैं। इतने बड़े कवि होकर भी यह ऐसे मन्दभाग्य थे, कि इनका अच्छा आदर कहीं नहीं हुआ। यह बड़े छोटे सभी प्रकारके मनुष्योंके पास पहुंचे; परन्तु कहींपर अपना उचित सत्कार होते न देखकर इनको केशव और गंगसे द्वेष होने लगा; जिनको अकबर तथा बीरबर आदि दानियोंने निहालकर दिया था। इस द्वेषका आ-

भास इनके इस कवित्तसे प्रगट होता है। जगद्दर्शन पच्चीसीमें आपका द्वेष पूर्ण कवित्त यह है—

अकबर बीरबर बीर कविवर केशो,
गंगकी सुकवितायें गाई रस पाथीने।
बरनि बरनि नारी नरनि धरनि पनि,
मोहि लीन्हें तानारीरी ताताधिन ताथीने॥
बिन भगवंत भजे अंतमें विपति पैये,
देव गति पाई काहू सम्पतिके साथीने।
एक दल सहित बिलाने एक पल ही में,
एक भये भूत एक मीजमारे हाथीने॥

क्रमानुसार यहां भारत विजयी अकबरके ससैन्य कालके गाल में बिला जानेका, सेनापति बीरबलका काबुलकी चढ़ाईमें अचानक पल भरमें नष्ट होनेका, कविवर केशवके भूत होनेका, और कवि गंगका हाथी द्वारा मीज मारे जानेका वर्णन है। इस तरह इन्होंने कवि और उनके आश्रय दाता दोनोंकी ही निन्दा कर अपने मनके फफोले फोड़े हैं; क्योंकि यह महाशय कुछ ऐसे सन्तोषी और साधु पुरुष भी न थे। उनका आजम शाहसे लेकर छोटे मोटे जमीं-दारोंके यहां जाना और उनकी प्रशंसामें अपने ग्रन्थोंका निर्म्माण करना ही इस बातका यथेष्ट प्रमाण है।

इन्होंने तो प्रायः नर-नारियोंके वर्णनमें ही अपनी कविता की है। ऐसा जान पड़ता है कि इसमें सफल मनोरथ न होनेपर उनको इससे ग्लानि अवश्य उत्पन्न हुई थी, जिसके कारण श्रृङ्गार

सकी कविता करना इन्होंने छोड़ दिया । पीछेसे इन्होंने
ककके आधारपर अपनी चार पच्चीसियाँ बनायीं । रस
नेका पश्चात्ताप उनको अवश्य हुआ था । इस बातको
ने एक कवित्तमें स्वयं स्वीकार करते हुए लिखते हैं—

ऐसे हौं जु जानतो कि जैहै तू विषैके संग,
ऐरे मन मेरे हाथ पांव तेरे तोरतो ।
आजुलगि कत नर नाहन की नाहीं सुनि,
नेह सों निहारि हारि बदन निहोरतो ॥
चलन न देतो देव चंचल अचल करि,
चाबुक चितावनीन मारि मुख मोरतो ।
भारो प्रेम पाथर नगारो दै गरे में बांधि,
राधावर बिरदके वारिदमें बोरतो ॥

८७—देवकवि और तुलसी ओझा ।

महाकवि देवजीने पावस ऋतुका निम्नलिखित कवित्त
जो बहुत प्रसिद्ध है :—

आई ऋतु पावस न आये प्रान प्यारे यातें,
मेघन बरज आली गरजन लावै ना ।
दादुर हटकि बकि बकिके न फोरैं कान,
पिकन पटकि मोहि सबद सुनावै ना ॥
बिरह व्यथातें हौं तो व्याकुल भई हौं देव,
चपला चमकि चित्त चिनगी जगावै ना ।

चातक न गावै मोर सोर न मचावै घन,
घुमड़ि न छावै जौलौं लाल घर आवै ना ॥

इसके जवाबमें जोधपुरवाले तुलसीजी ओझाने यह कवित्त बनाया :—

आये श्याम सुन्दर सनेही घर सावन में
सुखसों सखी री अब रैन दिन जीहौं मैं ।
कोकिलाकौं कंठमाल पटहूं पपीहन कौं,
भौंरन कौं भूषन नवीन अब दीहौं मैं ॥
मोरन कौं मेवा और कुसुम समीरन कौं,
छीर बक पांतिन कौं प्याय अब पीहौं मैं ॥
तुलसी घटान हूं कौं नये दुपटान दीहौं,
बादर बहादरकौं आदर सों लीहौं मैं ॥

दोनों ही पावस ऋतुके कवित्त है। देवजीकी नायिका प्रोषितपतिका है, उसका पति विदेशमें है। और तुलसीजीकी नायिका आगतपतिका है उसका पति अभी विदेशसे आया है। पहिली जिनका अनादर करती है, दूसरी उन्हींका आदर करनेको तैयार है। सच कहा है, कि समयपर कही हुई बुरी बात भी अच्छी लगती है, और असमयमें कही हुई अच्छी बात भी बुरी मालूम होती है। वृन्द कवि अपनी सतसईमे कहते हैं :—

फीकी पै नीकी लगै, कहिये समय विचार ।
सबको मन हरखित करै, ज्यों विवाहमें गारि ॥
नीकी पै फीकी लगै, बिन अवसरकी बात ।
जैसे बरनत युद्धमें, रस सिंगार न सुहात ॥

८८—आलम और शेख।

आलम कवि पहले ब्राह्मण थे। एक बार उन्होंने अपनी पगड़ी शेख नाम्नी रंगरेजनको रंगनेको दी। उसके खूंटमें भूलसे एक टुकड़ा कागज बँधा रह गया था। जब उसने खोलकर देखा तो यह कवित्त लिखा पाया:—

> घूंघट जवनिकाहू कारे कारे केस निसि,
> कुटिला जराय जरे दीपक उजारी है।
> उघट किलक कटि किंकिनी नुपुर बाजैं,
> नैना नट नायक लकुट लटधारी है॥
> आलम सुकवि कहै रति विपरीत समै,
> श्रम विन्दु अंजुलि पुहुप भरि डारी है।
> अधर सुरङ्ग भूमि नृपति अनंग आगे......

यह कवित्त आलमने बनाया परन्तु अन्तिम पद उस समय न बन सका था। फिर विचारकर बनानेके लिये पगड़ीमें उसे बांध दिया और भूल गये। शेखने पगड़ी रंगकर और उस कवित्तको पूरा करके उसी प्रकार उसी खूंटमें बांध दिया। शेखका पद यह था:—

> "नृत्य करे बेसरको मोती नृत्य कारी है।"

आलमजीने अपनी पगड़ी ले जाकर जब यह पद पढ़ा तो उसे रंगाई देने गये, और उससे पूछा कि 'इस कवित्तकी पूर्ति किसने की?' शेखने उत्तर दिया "मैंने।" आलमने एक आना पगड़ीकी

रंगाई और एक हजार रुपये कवित्तको बनायीके उसे दिये, और उसी दिनसे दोनोंमें प्रेम हो गया। अन्तमें आलमने मुसलमान होकर उसके साथ निकाह कर लिया। कोई कोई उक्त कवित्तके स्थानपर निम्नलिखित दोहेको इस घटनाका कारण बतलाते हैं।

आलम—कनक छरीसी कामिनी, काहेको कटि छीन।
शेख—कटिको कञ्चन काटि विधि, कुचन माहिं धरि दीन॥

शेखके मरनेके बाद आलमने उसकी स्मृतिमें यह छन्द कहा थाः—

जाथल कीन्हें विहार अनेकन ताथल काँकरी बैठ चुन्यों करैं।
जा रसनातें करी बहु बातन ता रसनातें चरित्र गुन्यों करैं।
आलम जौनसे कुञ्जनमें करी केलि तहां अब सीस धुन्यों करैं।
नैननमें जे सदा रहते तिनकी अब कान कहानी सुन्यों करैं॥

८९— शेख और मुअज्जमशाह।

आलम कवि पहले ब्राह्मण थे। यह शेख नामक रंगरेजिनपर मोहित होकर मुसलमान हो गये थे, और उससे निकाह कर लिया था। इनके एक पुत्र हुआ, जिसका नाम शेखने जहान रक्खा था। यह महाशय औरङ्गजेबके द्वितीय पुत्र मुअज्जमशाहके पास रहते थे। शेख भी अच्छी कविता करती थी। एक दिन शाहजादेने शेखको अपने पास बुलवाया और मज़ाक करके उससे पूछा, "क्या आलमकी औरत आप ही हैं?" शेखने तुरत जवाब दियाः—

"जी हुजूर जहानकी मा मैं ही हूं ।" शाहजादा इस हाजिर जवाबको सुनकर बहुत लज्जित हुआ ।

९० युगलकिशोर और उनकी दीनता

युगलकिशोर नामके एक कवि दिल्ली प्रान्तमें हो गये हैं । ये महाशय अति दरिद्र थे । एक दिन इन्होंने अपनी अवस्थापर खिन्न होकर अपने इष्टदेव विष्णु भगवानको सम्बोधन कर यह व्यंग कवित्त बनाकर सुनाया:—

वेदको सुदामा घनाजाट राखे कामा छोर,
रंगबेको नामा निज हेतु ही उबारो है ।
कपड़ेके वास्ते कबीरपै कृपालु भये,
कारोबार जानि भवसागरतें तारो है ॥
अपनी हजामतको सेना हजूर राखे,
जूती तक्कु तोबड़े रैदास हूं विचारो है ।
जैसो तैसो भाट एक चाहिये कवित्तनकों,
युगलकिशोर प्रभु काहेको बिसारो है ॥

सुना जाता है, इस कवित्तके बनानेके बाद ही उनकी अवस्था सुधर चली, और दरिद्रता दूर होकर कुछ दिनमें उनकी पहुंच बादशाह तक हो गयी । कदाचित् यही प्रसिद्ध किशोर कवि हों, जो दिल्लीके बादशाह मुहम्मद शाहके दरबारमें रहते थे ।

८९—मनीराम और उनकी ईश्वर भक्ति

छन्दछप्पनीके रचयिता कन्नौज निवासी मनीराम मिश्र बड़े

ईश्वर भक्त थे। इनका एकमात्र पुत्र ऐसा बीमार पड़ा कि जीनेकी आशा न रही। उन्हें किसी प्रकारकी चिकित्सापर भरोसा न रहा, परन्तु ईश्वरपर उनका दृढ़ विश्वास अभीतक बना था। वह बार बार करुण स्वरमें इस कवित्त द्वारा भगवानकी प्रार्थना करते थे—

एक धना, दुसरे सधना, कबिरा, मलुका, रयदास चमारो।
गाढ़े परे पर आयो यहां, धरपंचिनको जहं होत अखारो॥
कासों करै केहिकी बिनती,चकचौंधि रह्यो मनिराम बिचारो।
एते बड़े करुना निधिको, इन पाजिन ही दरबार बिगारो॥

कहते हैं कि ईश्वरकी कृपासे लड़केको उसी समयसे आराम होने लगा और वह चन्द रोजमें नीरोग हो गया।

९२—गुरुदत्त और उनके काव्यमें अगन

गुरुदत्त शुक्ल कान्यकुब्ज ब्राह्मण कन्नौजके समीप मकरन्दपुरके रहनेवाले भाषाके सुकवि थे। इनके भाई देवकीनन्दन और शिवनाथ भी अच्छे कवि थे। इन्होंने पक्षीविलास नामक एक ग्रन्थ बनाया है। उसमें कबूतर पक्षीके वर्णनमें "गुरुदत्त तुम्ह यह छाड़िबे टोला" पद आ गया था। जब उन्होंने इसे विचारकर देखा, तो जाना कि इस काव्यमें 'अगन' पड़ा है, यह मिथ्या न होगा अर्थात् यह स्थान अवश्य त्यागना पड़ेगा, और हुआ भी ऐसा ही। कुछ दिन बाद इनको गोरखपुर जाना पड़ा। वहां किसी राजाने इन्हें दो गांव दिये। और तबसे वह वहीं रहने लगे।

९३—ताज और उसकी कृष्णभक्ति

ताज पञ्जाबकी रहनेवाली मुसलमान जातिकी एक स्त्री था।

रखानकी भांति कृष्णभक्तिमें खूब रंगा था। मीराब यह भी कृष्णको ही अपना पति समझती थी। इस रिचय इसकी कवितासे मिलता है उदाहरणार्थ चे लिखे जाते हैं:-

सुन दिलजानी साडे दिलदी कहानी,
तांडे दस्तही बिकानी बदनामी हूं सहूंगी मैं।
देव पूजा ठानी औ निमाज हूं भुलानी,
तजे कलमा कुरान सांडे गुनन गहूंगी मैं॥
स्यामला सलोना सिरताज सिर कुल्ले दिये,
तांडे नेह दागमें निदाग हो दहूंगी मैं।
नन्दके कुमार कुरबान तांडी सूरत पै,
तांडे नाल प्यारे हिंदुवानी हो रहूंगी मैं॥१

छैल जो छबीला, सब रंगमें रंगीला,
बड़ा चित्तका अड़ीला, कहूं देवतोंसे न्यार
माल गले सोहै, नाक मोती सेत सोहै कान,
मोहै मन कुण्डल, मुकुट सीस धारा है॥
दुष्टजन मारे संतजन रखवारे ताज
चित हितवारे प्रेम प्रीत कर वारा है।
नन्दका दुलारा जिन कंसको पछारा,
वह बृन्दावन वारा कृष्ण साहेब हमारा है

६४—बोधा और सुभान।

नेन उर्फ बोधा कवि, सरयरिया ब्राह्मण, फीरोजाबा

(जिला आगरा) के रहनेवाले थे । इनका जन्म काल संवत् १८०० के लगभग ज्ञात पड़ता है । किसी घनिष्ट सम्बन्धके का-कारण ये बाल्यावस्थामें ही जन्मभूमि छोड़ पन्नामे आ बसे थे। दरबारमें इनके सम्बन्धियोंकी बड़ी प्रतिष्ठा थी । इसलिये यह भी दरबारमें बेरोकटोक आने जाने लगे । महाराज इनकी विचित्र रचनासे बहुत प्रसन्न रहा करते, और प्यारके मारे इन्हें बुद्धसेनसे बोधा कहा करते । तभीसे इनका नाम बोधा प्रसिद्ध हुआ ।

दरबारमें सुभान नाम्नी एक यवनी वेश्या रहती थी । उसके रूपलावण्यपर बोधाजी ऐसे मोहित हो गये, कि अपनेको भूल गये । यह बात महाराजपर प्रकट हुई । बोधाजी कोपमें पड़े। छः महीने शहर बदलका हुक्म हुआ । पर ये ऐसे दीवाने हो रहे थे कि उसकी कुछ भी परवा न की । यह सवैया पढ़ते पढ़ते सुभानके घर पहुंचे—

पच्छिनको बिरछे हैं घने, बिरछानके पच्छीहुं हैं बड़े चाहक ।
मोरनको हैं पहार घने औ पहारनके घने मोर उमाहक ।
बोधा महीपनको मुकता औ घने मुकतानके केते बिसाहक ।
जो धन है तो गुनी बहुतो अरु जो गुन हैं तो अनेक हैं गाहक ॥

महाराजकी उक्त व्यवस्थासे कविकी प्रतिष्ठा जाती रही । फिर बात ही क्या थी जो खुद गरज वेश्या ऐसे मतवालेके फेरमें पड़ कर इनके साथ जाती । छूटते ही जवाब दिया, आप कवि हैं, फिर छः महीनेमें आ सकते हैं । मुझे कोई हुक्म नहीं हुआ, तो मैं खून लगाकर शहीद बनूं । आप अपना रास्ता लीजिये ।

सुभानकी ऐसी निष्ठुरता देख आपको बड़ी ग्लानि हुई, और तुरत यह छन्द पढ़ा—

लखि चीकने पातन पेड़ बड़ो रहे फूलन सों छबि छाइ सबै।
नकि ऐसो निवास सुवा विरम्यौ पछिवेकी धर्यौ चित आस तबै॥
कवि बोधा सुभान फर्‌यौ फलमें पछितान्यो विदा जब लीनो अबै।
सठ सेमरने यह ज्वाब दियो हमसों तुमसों पहचान कबै?

यह कहकर वहांसे चल तो दिये, पर सुभानको एक घड़ीके लिये भी न भूल सके। उसके वियोगानलमें तन-मन जलाते, जंगल पहाड़ोंमें भटकते और अनेक शहरोंकी खाक छानते रहे। इन्हीं दिनोंमें अपनी प्रेमिकाके वियोगमें आपने 'इश्क नामा' और 'विरह वारीश' नामक ग्रन्थ भी बनाये।

लोग कहते हैं कि इन्हीं दिनों भिखारीदास कायस्थ (काव्य-निर्णयके रचयिता प्रसिद्ध दास कवि) इन्हें मिले थे। वे (दास) अपनी मूर्खताके कारण गलेमें घड़ा बांधकर डूबने जाते थे, क्योंकि उन्हें कविता करना न आता था। बोधाने तरस खाकर उनके सिरपर हाथ फेर दिया, जिससे वे महान कवि हो गये। दासजी-का अन्तिम काल और बोधाका जन्म काल लगभग एक ही जान पड़ता है इससे यह किंवदन्ती कल्पित प्रतीत होती है।

अवधि पूरी होनेपर बोधाजी पन्ना पहुंचे। उस समय दर-बारमें सुभान भी उपस्थित थी। महाराज बड़ी खातिरसे पेश आये। कुशल पूछनेपर आपने विरहवारीशको तर्जुमा किया। फिर क्या था? सबके सब गोता खाने लगे। सबकी आंखोंसे

आंसूकी धारा बहने लगी । महाराज बोले,—'बोधा ! बस कर, बहुत हुआ, अब कुछ मांग ।' बोधाने महाराजको प्रसन्न देखकर कहा,—'सुभान अल्लाह" । दृढ़प्रतिज्ञ महाराजने सुभानको इनके साथ रहनेकी आज्ञा दे दी । ये भी अपनी मुरादको पहुंचकर सुखसे काल व्यतीत करने लगे । पन्नामें ही इनका देहांत हुआ । ये बड़े ही प्रेमी कवि हो गये हैं । इनका हृदय शाह आलमके मीर मुंशी घनआनन्दसे और रचनाशैली सवैयाकार ठाकुरसे मिलती जुलती है ।

६५ दूलह कवि और एक मुसलमान नवाब ।

दूलह कवि किसी मुसलमान नवाबके दरबारमें आया जाया करते थे । नवाबने एक दिन कविसे हँसी की,—"कविजी, आपकी मां भी तो आपको "दूलह" कहती होगी ।" दूलहने झट उत्तर दिया, "हुजूर मेरी मां तो मेरे जन्मसे आजतक मुझे 'दुल्लू दुल्लू' कहती आती है । दूलहका पद तो मुझे आपने ही दिया है ।" नवाब सुनकर लज्जित हो गये ।

६६ दूलह और एक बरात ।

एक बार दूलह कवि हाथीपर चढ़े कहीं किसी रईसकी बरातमें जा रहे थे । इतनेमें एक कवि रास्तेमें मिला, और दूलहको देखकर बोला:—

"और बराती सकल कवि, दूलह दूलह राय ।"

सुनते ही दूलहने चट हाथीसे उतर वह हाथी कविको दे

दिया, जो किसी राजासे पारितोषिकमें पाया था, और आप पैदल चलने लगे। यह देख रईस इन्हें अपनी दूसरी सवारीपर चढ़ाकर ले गया।

९७ दूलह और उनका कंठाभरण।

दूलह कवि किसी महाराजके आश्रयमें रहकर बहुत सम्मान पाते थे। इस कारण दरबारके और कवियोंने कुढ़कर भरी सभामें कहा, "दूलहजी, आपने कुछ इने गिने फुटकर छन्दोंको छोड़कर कोई ग्रन्थ तो नहीं बनाया, अतः आप साधारण कवि होनेसे इतने बड़े सम्मानके योग्य नहीं हैं।" दूलहने उत्तर दिया, "हैं, क्यों नहीं ? ग्रन्थ तो मेरे पास मौजूद है।" महाराज भी अकचकाये; क्योंकि उन्होंने भी तो कभी इनका बनाया कोई ग्रन्थ नहीं सुना था। कहा, 'तो दिखलाइये।' कविजीने उत्तर दिया, "अच्छा कल प्रातःकाल ग्रन्थ सरकारकी सेवामें उपस्थित करूंगा।" यह कह-कर दूलहने घरपर आ सारे कामोंको छोड़छाड़ रातभरमें ही अपना प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कंठाभरण' बना डाला, और प्रातःकाल सभा-में ले जाकर महाराजको दिखलाया। यह देखकर महाराजने इनको बहुत सम्मानित किया और निन्दक कवियोंको इनके विरुद्ध मुंह खोलनेका साहस ही नहीं हुआ। दूलह कविका बनाया इस ग्रन्थके अतिरिक्त कोई दूसरा ग्रन्थ सुननेमें नहीं आया है। इनके पिता उदयनाथ कवीन्द्र और पितामह कालिदास भी बड़े कवि हो गये हैं।

९८ दत्त और पद्माकर ।

देवदत्त, उपनाम दत्त ब्राह्मण माढ़ि जिला कानपुरके रहनेवाले थे। यह चर्खारी नरेश महाराज खुमानसिंहके आश्रयमें रहते थे। पद्माकर, दत्त, और ग्वाल इन तीनोंमें कविता विषयपर बहुत छेड़-छाड़ रहा करती थी।

एक बार इन्होंने निम्नलिखित कवित्त महाराजको सुनाकर बहुत पुरस्कार पाया था:—

> अंबर अतर तर चन्द्रक चहल तन,
>
> चन्दमुखी चन्दन महल मैनसालासे।
>
> खासे खस खाने तहखाने तरताने तने,
>
> ऊजरे बिताने छुए लागत हैं पालासे॥
>
> दत्त कहै ग्रीषमकी गरम भरम कौन,
>
> जिनके गुलाब हाव हौज भरे तालासे।
>
> झालासों झरपि झर झापनसों वारा बांधि,
>
> धारा बांधि छूटत फुहारा मेघ मालासे॥

यह कवित्त ग्रीष्म ऋतुका है इसीके जवाबमें पद्माकरने शिशिर ऋतुपर अपना यह कवित्त बनाया:—

> गुलगुली गिलमें गलीचा हैं गुनीजन हैं,
>
> चांदनी है चिक हैं चिरागनकी माला हैं।
>
> कहै पद्माकर त्यों गजक गिजा हैं सजे,
>
> सेज हैं सुराही हैं सुरा हैं और प्याला हैं॥

शिशिरके पाला को न व्यापत कसाला तिन्हैं,
जिनके अधीन एते उदित मसाला हैं।
तान तुक ताला हैं विनोदके रसाला हैं,
सुबाला हैं दुसाला हैं विसाला चित्रसाला हैं॥

३६ ग्वाल और पद्माकर।

ग्वाल और पद्माकर दोनों समकालीन कवि थे, और दोनोंका-निवासस्थान मथुरा था। इन दोनोंमें बहुत नोंक-झोंक रहा करती थी। पद्माकरने गंगालहरी बनायी, तो ग्वालने जमुनालहरी गंगालहरीमें ५६ छन्द हैं, तो जमुनालहरीमें १०८। कई कवित्तोंके भाव भी आपसमें टकराते नजर आते हैं। दोनों ही अनुप्रास और यमकके भक्त थे। नमूना देखिये:—

ग्वालजी लिखते हैं—

ग्वाल जमुनाके लखि नाके भये चित्रगुप्त,
बैन करुनाके बोलि मेरी मति ख्वै गई।
कौन गहै करमे कलम कौन काम करै,
रोसकी दवाइत सों रोसनाई छ्वै गई॥
ग्वाल कवि काहे ते न कानदै जमेस सुनौ,
नौकरी चुकाय कहां तेरी आंख ख्वै गई।
लेखा भयो ड्योढ़ो रोजनामाको सरेखा भयो,
खाता भये खतम फरद रद ह्वै गई॥

इसके जवाबमें पद्माकरजी कहते हैं—

देखि गंगाकी रीति बोल्यो जमराज देसै,
एरे चित्रगुप्त मेरे हुकुममें कान दे ।
कहै पद्माकर यह नरकन मूंदि करि,
मूंदि दरवाजनको तजि यह थान दे ॥
देखु यह देवनदी कीन्हें सब देव यातैं,
दूतन बुलायकै बिदाकै बेगि पान दे ।
फारि डारु फरद न राखु रोजनामा अब,
खाता खत जान दे बहीको बह जान दे ॥

यह कहना कठिन है कि किसने किसका भाव लिया है। ग्वालने अपनी यमुनालहरी संवत् १८७९ में बनायी है। उसमें लिखा है—

संवत् निधि ऋषि सिद्धि ससि, कातिक मास सुजान ।
पूरनमासी परम प्रिय, राधा हरिको ध्यान ॥

परन्तु पद्माकरने गंगालहरीमें सन् संवत् कुछ नहीं लिखा है। पद्माकरकी मृत्यु संवत् १८९० में हुई है। कहते हैं कि यह कुष्ट रोगसे पीड़ित हो अंत समयमें गंगा सेवन करने आये, उसी समय गंगालहरी बनायी । इससे तो यही प्रतीत होता है, कि पद्माकरने ग्वालका भाव लिया होगा । यद्यपि ग्वाल कविका भाव अच्छा है, परंतु पद्माकरका कवित्त अधिक जोरदार है ।

१०० पद्माकर और ग्वाल ।

एक बार मथुरामें किसी कवि समाजमें एक सज्जनने दोनों कवियोंको यह समस्या पूर्तिके लिये दी—

"गांठमें जमा रहै तो खातिर जमा रहै।" दोनोंने ही :
अलग इस भांति उसकी पूर्ति की:—

ग्वाल—जिसका जितेक साल भरमें खरच तिस्से,
चाहिए तो दूना पै सवायो तो कमा रहै।
हूर या परीशा नूर नाजनी शहूर वारी,
हाज़िर हमेशा होय तौ दिल थमा रहै॥
ग्वाल कवि साहिब कमाल इल्म सोहवत हो,
यादमें गुसैयांके हमेशः विरमा रहै।
खानेको हमा रहै न काहूकी तमा रहै सु
गांठमें जमा रहै तो खातिर जमा रहै॥

पद्माकर—गांठमें न दाम तातें सूनो लगे निजधाम,
आठों घड़ी आठों जाम चिन्ता चितको दहै
जाके पास जाय कहूं दुखको बखान करै,
एक दुख कहो तो अनेक अपने कहै॥
कहै पद्माकर हितू हैं सभी भैया बंधु,
विपत परे पै कोऊ नेक न भुजा गहै।
झूंठमूंठ सब कहैं खातिर जमाको राखु,
गांठमें जमा रहै तो खातिर जमा रहै॥

कहना न होगा कि ग्वालका कवित्त पद्माकरके कवि
हीं ऊंचे दरजेका है। पद्माकरकी कविताका विशेष गुण यह
के उसका अंतिम चरण बहुत जोरदार होता है। परंतु इस क
का अंतिम चरण ही बहुत लचर है।

१०१ पद्माकर और रघुनाथराव ।

पद्माकर भट्टके पिता मोहनलाल भट्ट आपासाहब रघुनाथराव भौंसला नागपुर नरेशके गुरु थे। जब पद्माकरजी पहले-पहल दरबारमें हाजिर हुए, तब महाराजकी प्रशंसामें यह कवित्त पढ़ाः—

संपति सुमेरकी कुबेरकी जो पावै तऊ,
　　तुरत लुटावत विलम्ब उर धारै ना।
कहै पद्माकर त्यों हेम हय हाथिनके,
　　हलके हजारनके बितरै बिचारै ना॥
गंज गज बकस महीप रघुनाथराव,
　　पाए गज धोखे कहूं काऊ देइ डारै ना।
याही हेतु गिरिजा गजाननको गोइ रही,
　　गिरित गरेतें निज गोदतें उतारै ना॥

उस समय वहां संस्कृत जाननेवाले अनेक पण्डित बैठे थे। भौंसलाने पंडितोंसे पूछा 'कवित्त कैसा है।' पंडितोंने उत्तर दिया कि 'छन्द तो अच्छा है, परंतु है भाषामें।' पद्माकरने सोचा "इतना सुन्दर छन्द होनेपर भी केवल भाषामें बने रहनेके कारण पंडित-मंडलीने इसका निरादर किया है।" बस लगे पद्माकरजी पंडितों-को भाषामें गंदी गंदी गालियां सुनाने। तब तो इस अद्भुत दृश्यसे दरबारमें खलबली मच गयी। पंडितोंने क्रुद्ध होकर महा-राजसे कहा "देखिये यह कलका छोकड़ा जरा भी नहीं शर्माता, और हम लोगोंको भद्दी भद्दी गालियां सुना रहा है।"

इसका कारण पूछनेपर पद्माकरने उत्तर दिया, "पृथ्वीनाथ, भाषामें बने होनेसे मेरा सुन्दर छन्द उपेक्षणीय हो गया है, तो भाषामें ही कही हुईं मेरी गालियां उपेक्षणीय क्यों नहीं होतीं ? इससे तो पंडितोंको कुछ भी अपमान वा रंज न मानना चाहिये।"

पद्माकरके इस युक्तिपूर्ण उत्तरसे पंडितमण्डली लज्जित हो चुप रही और महाराज रघुनाथरावने इन्हें बहुत सम्मानित किया, और एक लाख रुपये इनाममें दिये। उक्त कवित्त दानवीरका बहुत उत्कृष्ट उदाहरण है।

१०२—पद्माकर और ठाकुर।

एक बार गोसाईं हिम्मत बहादुरके दरबारमें पद्माकर और ठाकुर कवि दोनों मौजूद थे। हिम्मत बहादुरने पद्माकरसे पूछा, "कहिये कविजी ! ठाकुरकी कविता कैसी होती है ?" पद्माकरजी बोले "गोसाईंजी कविता तो बहुत अच्छी और रसीली होती है; पर इनके शब्द हल्केसे होते हैं।" ठाकुरने तत्काल उत्तर दिया, 'हां कविजी ठीक है, शब्द हल्केसे होनेके कारण ही तो हमारी कविता उड़ी उड़ी फिरती है (अर्थात् चारों ओर प्रसिद्ध है) और आपके भारी शब्द होनेके कारण आपकी कविता उड़ नहीं सकती (अर्थात् अभीतक आपकी प्रसिद्धि नहीं हुई)। यह सुन कर पद्माकरजी चुप रह गये, कुछ जवाब देते न बना।

यह पद्माकरके कविता करनेका प्रारम्भकाल था। अभी तक उनकी ख्याति नहीं हुई थी।

१०३—पद्माकर और उनके साले ।

एक समय सागर नरेश रघुनाथ राव (आपासाहेब) के यहां कवियोंका जमाव था। सभी कवि अपनी अपनी प्रतिभा दिखला रहे थे। पद्माकरजीने अपना यह कवित्त पढ़ा:—

एकी संग धाये नन्दलाल औ गुलाल दोऊ,
　　दृगन गयेरी भरि आनन्द मढ़ै नहीं।
धोय धोय हारी पद्माकर तिहारी सौंह,
　　अब तो उपाय कछु चितमें चढ़ै नहीं ॥
कहा करौं कहां जाऊं कासों कहौं कौन सुनै,
　　कोऊ तो बतावो जातैं दरद बढ़ै नहीं।
येरी मेरी बीर जैसे तैसे इन आंखिनते,
　　कढ़िगो अबीर पै अहीर को कढ़ै नहीं ॥

कवित्त पढ़कर पद्माकरने सबसे पूछा कि, बताओ यह कौन नायिका है? जिसको जैसा समझमें आया उसने वैसा उत्तर दिया। वहां पद्माकरके एक साले भी बैठे थे। उन्होंने दिल्लगी करते हुए कहा "इस कवित्तकी नायिका पद्माकरकी बहिन है, क्योंकि "पद्माकर तिहारी सौंह" और "बीर" शब्दके प्रयोगसे साफ जाहिर होता है, कि वह अपने भाई पद्माकरकी कसम खाती है। इस बातपर सभाके सब लोग हंसने लगे, और पद्माकर ऐसे लज्जित हुए, कि उनसे कुछ कहते न बना। कहते हैं, उस समयसे पद्माकरने अपने किसी छन्दमें इस भांति बीर शब्दका प्रयोग कभी न किया।

१०४—पद्माकर कवि और महाराज जगतसिंह।

संवत् १८६० में सवाई प्रतापसिंहका देहान्त होनेपर जगतसिंह बड़ी धूमधामसे जयपुरकी राजगद्दीपर बैठे। खूब उत्सव हुआ। राजाने इतना दान किया, कि सबको अयाचक कर दिया। एक दिन कवि पद्माकरने भरे दरबारमें यह कवित्त पढ़ सुनाया—

बकस बितुण्ड दये, भुंडनके भुंड दये,
मुंडनकी मालिका दई त्यों त्रिपुरारीकों।
कहै पद्माकर करोरनके कोष दये,
षोड़स हूं दीन्हें महादान अधिकारीकों॥
ग्राम दये, धाम दये, उदित अराम दये,
अन्न अति दीन्हें जगतीके जीवधारीकों।
दाता जगसिंह दोय बातें पै न दीन्हीं काहू,

इतना कहकर चुप हो रहे। राजाने इसमें अपना अपमान समझा। इसलिये क्रोधसे उनकी भौंहें चढ़ गयीं। तब पद्माकरने यह अन्तिम पद कहा—

"बैरिनकों पीठ और दीठ परनारीकों॥"

यह सुन महाराज अति प्रसन्न हुए, और उन्हें बहुत इनाम दिया। इन्हीं महाराजके आज्ञानुसार पद्माकरजीने प्रसिद्ध "जगतविनोद"-की रचना की।

१०५ पद्माकर और दौलत राव सिंधिया।

पद्माकर भट्ट अपने कालके अद्वितीय कवि थे। उनकी

ख्याति सुनकर ग्वालियरनरेश दौलतराव सिंधियाकी उनसे मिलनेकी प्रबल इच्छा हुई। उस समय पद्माकर कुष्ठ रोगसे ग्रसित हो गये थे। वे जयपुरसे आगरे आ गये थे। महाराजने सवारी भेजकर उन्हें बुलवाया। अन्धे, कोढ़ी आदि रोगियोंको देखना राजाके लिये शास्त्रमें निषिद्ध है। मन्त्रियोंने निवेदन किया कि महाराज, परंपरासे ऐसी रीति चली आयी है, कि ऐसे रोगी राजाके समीप नहीं आने पाते। इसलिये पद्माकरजीको दरबारमें न आने देना चाहिये। महाराजने कहा, अच्छा मैं पद्माकरको न देखूंगा, इसलिये बीचमें एक परदा डाल दिया जाय। वे भीतरसे अपनी कविता पढ़ें। मैं उनके मुंहसे उनकी कविता सुना चाहता हूं। वैसी ही व्यवस्था की गयी। एक कोठरीमें पद्माकर बैठाये गये। दरवाजेमें परदा डाल दिया गया। बाहर दालानमें महाराज और उनके सभासद बैठे। हुक्म होते ही पद्माकरने अपने कवितासमुद्रको तरङ्गित किया। जैसे ओज भरे इनके कवित्त होते थे, वैसा ही जोरदार इनका पढ़ना भी था। इन्होंने महाराजकी प्रशंसामें ऐसे भड़कीले छन्द पढ़े कि महाराज मुग्ध हो गये। उनसे न रहा गया, और झट परदा हटा भीतर जाकर पद्माकरको गलेसे लगा लिया। कुछ दिन पद्माकर बड़े सम्मानके साथ ग्वालियरमें रहे। उन्होंने महाराजकी आज्ञासे "आलीजा प्रकाश" नामक नायिका भेदका ग्रंथ भी बनाया। इस ग्रन्थमें महाराजकी प्रशंसाके तथा अन्यान्य विषयोंके कुछ स्फुट छन्दोंको छोड़कर प्रायः सभी छन्द 'जगत विनोद'के रखे गये हैं।

पहले पहल पद्माकरने सिंधिया महाराजकी प्रशंसामें यः कवित्त पढ़ा था—

मीनगढ़ मुंबई सुमन्द मन्दराज बंग,
बन्दरको बन्द करि बन्दर बसावैगो ।
कहै पद्माकर कसकि कासमीरहूंको,
पिंजर सो घेरिकै कलिञ्जर छुड़ावैगो ॥
बांका नृप दौलत अलीजा महाराज कबूं,
साजि दल पकरि फिरङ्गिन दबावैगो ।
दिल्ली दहपट्टि पटनाहूंको झपट्टि करि,
कबहूंक लत्ता कलकत्ताको उड़ावैगो ॥

१०६ पद्माकर और उनका कुष्टरोग ।

कवि पद्माकरको वृद्धावस्थामें कुष्ट रोग हो गया था । अनेक प्रकारकी औषधि और यत्न करनेपर भी जब उनका रोग आराम न हुआ, तो उन्होंने अपना अवशिष्ट जीवन गङ्गातटपर रहकर व्यतीत करना विचारा । जब वह कानपुरके समीप गङ्गाकी शरण-में जा रहे थे, तो रास्तेमें अपने पापोंको सम्बोधन करके यः कवित्त पढ़ते जाते थे:—

जैसे तू पहले मोकौं नेक न डरात हुतो,
तैसे अब हौंहू तो सौं नेकहूं न डरिहौं ।
कहै पद्माकर प्रचंड जो परैगो तो,
उमंड कर तोसौं भुजदंड ठोकि लरिहौं ॥

चल्योचल चल्योचल बिचल न बीचहीतें,
　　कीच बीच नीच तो कुटुम्बको कचरिहौं ।
परे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
　　गङ्गाकी कछारमें पछार छार करिहौं ॥

कहते हैं, उसी समयसे उनका रोग घटने लगा, और कुछ दिन गंगा सेवन करनेके उपरांत बिलकुल जाता रहा और वह निरोग हो गये। इन्होंने गंगास्तुतिका 'गंगालहरी' नामक कवित्तोंका बड़ा भड़कीला ग्रन्थ बनाया है।

१०७—पद्माकर और उनके काव्यमें अगन ।

कितने ही कविजन पद्माकरके अन्त समयमें गंगा सेवनका कारण उनके एक कवित्तमें अगन पड़ना बतलाते हैं। वह कवित्त यह है:—

यद्पि हमारो कन्त रहत हमेस घर,
　　तद्पि तिहारो दुख आन मोहि घेरोरी ।
पद्माकर प्यारी हो परोसिन हमारी तुम,
　　याहीतें भयो है छीन मोतन घनेरोरी ॥
हूं है कहा हाय अब औरै यह पौन लाग्यो,
　　होन लाग्यो भौन भौन भौंरनको फेरोरी ।
शिशिरको अन्त आयो प्रगट बसंत आयो,
　　अन्त आयो मेरो पै न कंत आयो तेरोरी ॥

यह कवित्त आलोजा प्रकाशमें अन्य सुरति दुःखिताके उदा-

हरणमें दिया गया था। जब पद्माकरजीका ध्यान इस कवित्तके अन्तिम चरणपर आकृष्ट हुआ, और उन्होंने इसमें 'अन्त आयो मेरो' यह अगन पड़ता देखा तो उन्हें विश्वास हो गया, कि अब मैं अधिक दिन न बचूंगा। मेरा अन्तकाल समीप आ गया है। इसलिये गंगातटपर निवासकर अवशिष्ट आयु वहीं व्यतीत करना चाहिये। यह सोच कानपुरके समीप गङ्गा किनारे मकान बनवाकर रहने लगे। कहते हैं, कि वे सात वर्षतक जीवित रहे, और ८० वर्षकी अवस्थामें उनका देहान्त हुआ। भूषण और केशवके बाद इन्हींका स्थान है, जिन्होंने कविता बनाकर इतना धन कमाया। कहते हैं, कि मरनेके समय ये ८० लाख रुपया नगद छोड़ गये थे। यहींपर उन्होंने गङ्गालहरी और "प्रबोध पचीसा" बनाया था।

१०८—जगत सिंह और पद्माकर।

एक दिन जयपुर नरेश सवाई जगतसिंहने सभाके बीच पद्माकरको देखकर कहा कि 'आज कलके कवि ऐसे होते हैं कि "उठाउ आस पासते"। पद्माकरजीने इसी समस्यापर यह कवित्त बनाकर तत्काल सुनाया—

सौतिनके त्रासतें रहे धौं और वासत न
आये कौन गांसतं प्यो करु सोतलास तें।
कहैं पद्माकर सुवासतैं, जवासतें सु—
कलनकी राशितें जगी है महा सासतें॥
चांदनी विकासतें सुधाकर प्रकाशतें न

राखत हुलास तें न लाउ खसखास तें ।
पौन कछु आसतें न जाउं उड़ि वासतें अ—
री गुलाब पासतें उठाउ आस पास तें ॥

उनकी इस दैवी स्फूर्तिको देख महाराज परम प्रसन्न हुए, और सारी सभामें उनकी वाहवाही होने लगी। महाराजने इस कवित्तको सोलहबार पढ़वाया और सोलह हाथी, गांव, पोशाक तथा २५०००) नगद इनाममें दिये। उसी समय महाराजने उन्हें एक नायिकाभेदका ग्रन्थ बनानेकी अनुमति दी। महाराजके आज्ञानुसार उन्हींके नामपर पद्माकरजीने अपना प्रसिद्ध 'जगत विनोद' नामक ग्रन्थ बनाया। उक्त कवित्त इसी ग्रन्थमें प्रौढ़ा उत्कण्ठिताके उदाहरणमें दिया गया है। कहते हैं कि इस ग्रन्थ रत्नकी बनवाईके इन्हें एक लाख रुपये मिले थे।

१०६—बेनी कवि और दयाराम।

दयाराम नामके कोई रईस लखनऊमें रहते थे। एकबार उन्होंने अपने बगीचेके कुछ आम बेनी कविको भेजे। आम बहुत ही छोटे और सड़ियल थे। कविजी उन्हें देखते ही कुढ़ गये। उनसे न रहा गया, और आमोंकी प्रशंसामें ये दो कवित्त बना डाले:—

चूकसे लगत चाखे लूकसी लगावै कण्ठ,
ताप सरसावै है अपूरब अरामके।
रसको न लेस चोप रेसा है हमेस छांड़,
दीनो सब देस पकुसाने परे घामके।

बुरे बदसूरत बिलाने बद्बोथदार,
बेनी कहै बकुला बनाये मनो चामके।
आये बिन दामके ये निपट निकामके,
सुकौड़ीके न कामके हैं आम दयारामके ॥१॥
चींटीकी चलावैको मसाके मुख आप जाय,
स्वासको पवन लागे कोसन भगत है।
ऐनक लगाये मरु मरुकै निहारे जात,
अनुपरमानुकी समानना खगत है।
बेनी कवि कहै हाल कहां लौं बखान करौं,
मेरी जान ब्रह्मको बिचारिवो सुगत है।
ऐसे आम दीन्हें दयाराम मनमोद करि,
जाके आगे सरसों सुमेरु सो लगत है ॥ २ ॥

यह कवि बड़ा मसखरा और खरी कहनेवाला था। मुला-तो इसे छू भी नहीं गया था। एक बार किसी रईसने इन्हें रजाई इनाममें दी थी। रजाई बहुत ही हल्की और कम कीमती थी। कविजीने उसकी प्रशंसामें झट यह कवित्त बना डालाः—

कारीगर कोऊ करामात तैं बनाय ल्यायो,
लीनो दाम थोरा देखि नई सुघरई है।
रायजूको रायजू रजाई दीनी राजी ह्वै कै,
सहरमें ठौर ठौर सोहरत भई है॥
बेनी कवि पायकै अघाय घरी द्वैक रहे,
कहत बनै न कछु ऐसी गति ठई है।

सांसलेत उड़िगो उपला औ भितल्ला दोऊ,

दिन द्वै की बाती हेतु रुई रह गई है ॥

यह रायजू टिकैत राय तो न होंगे, कोई दूसरे ही राय साहब होंगे; क्योंकि उन्हींके आश्रयमें तो ये रहते थे, और टिकैतराय प्रकाश नामक ग्रन्थ भी उन्हींकी आज्ञासे बनाया था।

११० बेनी कवि और एक रईस ।

एकबार किसी कंजूस रईसने अपने पिताके श्राद्धके दिन कुछ पेड़े बेनी कविके यहां भेज दिये। कविजी उस समय घरपर नहीं थे। दो दिन बाद जब वे घर आये, तो सुना कि अमुकके यहांसे ये पेड़े आये हैं। पेड़े पहले ही कई दिनके बने और बुसे हुए तो थे ही, दो दिन और पड़े रहनेसे उनमें दुर्गन्ध आने लगी थी। कविजी ऐसा उमदा तोहफा पाकर भला कब चुप रह सकते थे? उन्होंने चट नीचे लिखा सवैया लिखकर उस कंजूस मक्खी-चूस मनहूस मटियाफूसके पास भेज दिया:—

चींटी न चाटत मूसे न सूंघत,

माछी न बासतें आवत नेरे।

आन धरे जब तें घर में तब

तें रहै हैजा परोसिन घेरे ॥

माटीहुंमें कछु स्वाद मिलै इन्हैं

खाय सो ढूंढ़त हर्र बहेरे।

चौंक उठ्यो पितु लोकमें बाप सो

आपके देखि सराधके पेरे ॥

१११—बेनी कवि और हरगोविन्द।

हरगोविन्द नामके एक देहाती वैद्य लखनऊमें रहते थे। एक बार बेनी कवि, जो दीवान टिकैतराय लखनऊवालेके यहां थे, कुछ बीमार पड़े। उन्होंने हरगोविन्दजीको इलाज करनेके लिये बुलाया। पेटकी शिकायत समझकर वैद्यने जुलाबकी गोली दी इस गोलीके खानेसे कविजीके पेटमें बड़ी जलन हुई, और ऐसे दस्त आए, कि वे मरते मरते बचे। वैद्यराज और उनकी गोलीकी प्रशंसामें कविजीने यह कवित्त बनाया:—

संभु नैन ज्वाल औ फनोंकी फुलकार कहा,
जाके आगे महाकाल दौरत हरोलीतें।
सातों चिरजीवी पुनि मारकंडे लोमस लौं,
देख कंपमान होत खोलै जब झोलीतें॥
गरल अनल औ प्रलैके दावानल भल,
बेनी कवि छेद लेत गिरत हथोलीतें।
बचन न पावै धनवन्तर जो आवै हर,
गोविन्द बचावै हरगोविन्दकी गोलीतें॥

११२ चन्दन कवि और लखनऊके नवाब।

वंदीजन चन्दनराय कवि पुवायां जिला शाहजहांपुर निवासी गौर राजा केशरीसिंहके यहां रहते थे। एक बार लखनऊके नवाबने इनकी ख्याति सुनकर अपने यहां बुलवा भेजा; परंतु इन्होंने वहां जाना पसन्द न करके यह दोहा लिख भेजा:—

खरी टूक खर खरथुआ, खारी नोन संयोग ।
येतौ जो बरही मिलै, चन्दन छप्पन भोग ॥

कहा जाता है, कि राजाने बहुत दबाव डालकर उन्हें लखनऊ भेजा; परंतु वह वहां न जाकर काशी चले गये ।

११३ कान्हरदास और भक्तजन

कान्हरदासजी वैरागी साधू आगरा मुहल्ला ताजगंजके रहनेवाले थे । यह नजीर और मौजके समकालीन थे । इनका बनाया पद रामायण नामका एक ग्रन्थ भी है । एक दिन कुछ भक्तोंने कान्हरदासजीको किसी मन्दिरमें भजन गानेके लिये बुलाया । बाबाजी तमाखू भी पीते थे; परंतु मन्दिरमें तमाखू पीना निषिद्ध था । जब गाते-गाते बाबाजीका पेट अफरने लगा, तब उन्होंने यह भजन गाना आरम्भ किया—

है कोई ऐसा मित्र हमारा जो हुक्का भर लावे ॥
कोई खावे कोई पीवे कोई ब्रह्माण्ड चढ़ावे ॥
कान्हरदास कलियुगकी महिमा इसको बुरा बतावे ॥
है कोई ऐसा मित्र हमारा जो हुक्का भर लावे ॥

जब भक्तोंको मालूम हुआ कि बाबाजी तमाखू बिना बेचैन हैं, तब उसी समय उनके लिये हुक्का भरकर लाया गया । जब बाबाजीने पेटभर तमाखू पी लिया; तब आगेको दूसरा भजन गाया ।

११४ नजीर और बुड्ढा ।

अकबराबादी मियां नजीर हिन्दी और उर्दूके बहुत अच्छे कवि

हो गये है। सभी हिन्दी और उर्दू जाननेवाले इनकी कवितासे परिचित हैं। इनके बहुतसे शिष्य थे। उनमें एक शिष्य बुद्धा अहीर भी था। एक दिन किसी मुशाहरेमें उस्ताद नजीरने अपनी कोई नयी कविता पढ़ सुनायी, जो और सब शायरोंसे अच्छी हुई। उस्तादकी तारीफमें बुद्धा कह उठा—

"जिसको नजीर कहते है वह बेनजीर है।"

मियां नजीरने तुरत यह काफिया मिला दिया।

"पै शायरीके हकमें तो बुद्धा अहीर है।"

नजीरकी बहुतसी कविता अप्रकाशित पड़ी हैं। यद्यपि इनको मरे सौ वर्षसे अधिक बीत गये, तौभी कुछ दिन पहिले होलीमें ताजगञ्जसे जो स्वांग निकलते थे, उनमें हर साल इनकी एक न एक नयी कविता सुननेमें आती थी।

११५ नजीर और उनका लड़का।

एक दिन मियां नजीर अपने लड़केके साथ बैठे खाना खा रहे थे। खानेमें लालमिर्चका आचार भी था, जो लड़केको बहुत स्वादिष्ट लगा। उसने आचारकी तारीफमें कहा—

क्या खूब मज़ेदार हैं, आचारको यह मिर्चे।

और दूसरा चरण न बना सका तब नजीरने तुरत यह मिसरा मिला दियाः—

याकूतकेसे टुकड़े औ लालकीसी किर्चे॥

नजीरका यह लड़का भी अच्छा शायर था, जो बांदेके नवाब

के यहां रहता था । सन् १८५७ के गदरमें यह भी ब्रिटिश गवर्न्मे॰ द्वारा बागी समझ नवाबके साथ कैद कर लिया गया था।

११६ नजीर और तिलंगा ।

एक दिन किसी तिलंगेने मिआँ नजीरको बेगारीमें पकड़ लिया। उसने एक खटिआ इनके सिरपर लाद दी, और चलनेको कहा। जब वह खटिआ उठाये चले जा रहे थे, तब रास्तेमें उनका कोई परिचित मनुष्य मिला। उसने नजीरसे पूछा 'उस्ताद! यह क्या?' नजीरने जवाब दिया—

लाल लाल कुरते औ नीले जांधिये ।
पूरबके घसखुदोंको तिलंगे बना दिये ॥

जब तिलंगेको मालूम हुआ कि यही मिआं नजीर हैं, जो बड़े भारी शायर हैं; तो उनसे माफी मांगी, और उन्हें बेगारीसे छुट्टी मिली।

११७ मौज और अन्य गवैये ।

मियां मौजकी गिनती बड़े गवैयोंमें है। इनके बनाये तिल्लाने बहुत प्रसिद्ध हैं। एकबार इन्होंने अपने लड़केके विवाहमें बहुतसे गवैयोंको निमन्त्रित किया। खूब जलसा हुआ। सब गवैयोंने मौजसे अर्ज की, कि हमलोग आपके मुंहसे भी कुछ सुननेके मुश-ताक हैं। मौजने वृद्धावस्थाके कारण बहुत दिनोंसे गाना छोड़ दिया था, परंतु अपने मेहमानोंके बहुत आग्रह करनेपर एक ढोलकी ले सबके बीचमें जा बैठे, और यह तिल्लाना गाया

"सखीरी श्यामकी वंशी वह बाजी"

जब खूब समा बंधा, और सब श्रोता उसमें लीन हो गये; तब मौजने एक ओर उङ्गलीसे दिखाकर ज्यों ही कहा कि "वह बाजी" त्यों ही सबका ध्यान उधरकी ही तरफ चला गया, और वह चुप-केसे उठकर सबके पीछे जा बैठे। जब सबने फिरकर देखा तो बीचमें खाली ढोलकी ही रखी पायी, और मियां मौज नदारद। अन्तमें वह सबके पीछे एक कोनेमें बैठे दिखायी पड़े। सबने उनकी बहुत प्रशंसा की। कहते हैं, उस दिनके बाद फिर मौजने कभी नहीं गाया। मौजका लडका भी, जो कवितामें अपना नाम "लहर" रखता था, अच्छा गवैया था।

११८ लौकी कवि और दीवानजी।

लौकी नामके किसी कविने एक दीवानजीकी बहुत दिनोंतक हाजिरी बजायी। उनका सवाल एक अंगरखेका था। कई बार मांगनेपर दीवानजीने कविको एक अंगरखा दिया। अंगरखा बहुत महीन, पुराना और कटा-फटा था। जब कविजीने घरमें आकर उसे खोलके देखा तो बहुत उदास हुए। दूसरे दिन उन्होंने दीवा-नजीके पास जाकर यह अर्ज की—

धोबी न धोवेको लेत इसे कहै पानीमें डारे मैं पाऊं न पाऊं।
जोर रहे खुलि ठौरहि ठौर औ तापर खोपैं चली हैं अगाऊं॥
लौकी कहैं हम जांच्यों दिवानजू, और मैं जाइके काहि सताऊं।
जो पै मया करि दीनो झगा तो पै सूईतगा दोऊ साथ ही पाऊं॥

११६ शिवनाथ कवि और एक राजा।

असनीवाले बंदीजन शिवनाथ कवि किसी राजाके यहां गये। राजा साहब एकाक्ष थे। बहुत दिन दरबार करते हो गये, परन्तु कुछ प्राप्ति न हुई। एक दिन राजा साहबके बगीचेका माली डाली लेकर आया। डालीमें कई तरहके अच्छे अच्छे फल-फूल थे। राजाने सब सभासदोंको बांट दिये। एक नीबू बच रहा था। शिव कवि भी उनकी कानी आंखकी तरफ बैठे थे। उन्हें राजा साहब देख न सके। जब उन्होंने मुंह फेरकर कविजीकी ओर देखा तो कहा 'अहा! कविजी बैठे हैं। मैंने तो आपको देखा ही नहीं।' कविने कहा 'महाराज, मैं तो उस समय अलक्ष लोकमें बैठा था, आप देखते तो कैसे देखते।' राजा साहब बोले—'मुझे बड़ा खेद है, कि आपको कुछ न मिला, अब तो यह एक नीबू बचा है। आप इसे ही ले लीजिये।' कविजीने कहा—"मेरे लिये यही बहुत है; परन्तु कृपाकर थोड़ासा नमक और मंगवा दीजिये। मैं उसके साथ इसे ही चाटकर रह जाऊंगा, और आपका यश गाया करूंगा।' इस व्यंग भरे कथनसे राजा साहब उस समय तो मन-ही-मन लज्जित होकर रह गये; पीछेसे कविजीका उचित सत्कार-कर उन्हें विदा किया।

इस कविने भड़ौआ बहुत कहे हैं, जो अधिकांशमें अश्लील हैं।

१२० कुन्दन कवि और एक चुगलखोर।

बुन्देलखंड निवासी कुन्दन कवि किसी राजदरबारमें गये।

बिदाईके समय उन्हें बहुत कुछ मिलनेकी आशा थी; परंतु एक कामदारने उनकी चुगली की। राजाके कान होते हैं, आंखें नहीं। उन्होंने अपने कामदारकी बात मानकर कविको बहुत सामान्य बिदाई दी। कुन्दनजीको जब यह हाल मालूम हुआ, कि इसी कामदारके कान भरनेसे महाराजका मन मुझसे फिर गया, तो उनके क्रोधकी सीमा न रही। उन्होंने उस चुगलखोरपर यह भड़ौआ बनाकर अपने जीका मलाल निकाला:—

पन्नाके पंडोर गढ़ झन्नाके झवैया झरि,
झाडूदार झांसीके भवैया भानपुरके।
कहै कविकुन्दन कमायूंके कुम्हार भांड़
दाउदके दरजी दमामी दानपुरके॥
तेली तिलंगानेके तमोली तेजगढ़ वाले,
भावजके भांगड़ सोनार सोनपुरके।
एते मिलि मारैं जूती चुगुल चवाई सीस,
काल्पीके कुञ्जड़े कसाई कानपुरके॥

वाह! वाह!! सजा भी हो तो ऐसी हो; पर यहां क्या था। उनपर तो मानो फूलोंकी वर्षा हो गयी। कवि हरिकेसने तो चुगलकी चांदकी निहाई बनाकर उसपर वज्रके हथौड़ेसे तरवार गढ़ी है। (देखिये हरिकेस और जगतसिंह।)

१२१ गौतम और काशी नरेश।

गौतम नामक एक कवि काशी नरेशके दरबारमें गये। महा

सोचा, ये जो चोपदार पोशाक पहने सोने चांदीके आसे बल्लम लेकर रोज आते हैं, इन्हें यदि उपयुक्त इनाम न दिया जायगा, तो न जाने ये रुष्ट होकर महाराजसे क्या क्या कहेंगे, अतएव इनका आना बन्द करना चाहिये । उन्होंने निम्नलिखित सवैया लिखकर महाराजके पास भेज दिया—

जीभ उचारि कियो मैं वृथा, अपने मनमें प्रभु ना कछु लैहैं ।
जेती करी सङ्क सेवकके, इतनी कहो कासों कबौं बनि ऐहैं ॥
जो इनआम न पाइ हैं पेसक, जोरि कछूकी कछू कहि देहैं ।
पायं न नोरो गरोबनके, हमैं राम चहैं तो अराम ह्वै जैहैं ।

–महाराज इसे पढ़कर बहुत हंसे, और उमापति नामक वैद्यको बुलाकर आज्ञा दी, कि तुम कविजीको आराम करो। सेवकजी तो निराश हो चुके थे, और वृन्दावन जानेकी तैयारी कर रहे थे। इतनेमें वैद्यराज आ पहुंचे। सेवक उनकी चिकित्सा करानेके लिये ठहर गये। विश्वनाथजीकी कृपासे वे कुछ दिनोंमें नीरोग हो गये। उन्होंने व्याजसे वैद्यराजकी प्रशंसा करते हुए यह सवैया महाराजको लिख भेजा—

आप बड़ो हितकै पठयो ये, बड़ोसे बड़ो हित धारिकै आये ।
ऐसे कछू रस दीन्हें हमें जो, छुधा अठ पाहरू मोहि सताये ॥
श्रीईश्वरीपरसाद नरायण, सेवक आजु उराहनो लाये ।
जात हुते जो रमापति पास, उमापति सो हम जान न पाये ॥

तात्पर्य यह कि रमापति कृष्णकी शरणमें वृन्दावन जाना चाहते थे; परन्तु उमापति (वैद्य वा विश्वनाथजी)-के सबबसे न जा सके।

सोचा, ये जो चोपदार पोशाक पहने सोने चांदीके आसे बल्लम लेकर रोज आते हैं, इन्हे यदि उपयुक्त इनाम न दिया जायगा, तो न जाने ये रुष्ट होकर महाराजसे क्या क्या कहेंगे, अतएव इनका आना बन्द करना चाहिये । उन्होंने निम्नलिखित सवैया लिखकर महाराजके पास भेज दिया—

जीभ उघारि कियो मैं वृथा, अपने मनमें प्रभु ना कछु लैहैं।
जेती करी सङ्ग सेवकके, इतनी कहो कासों कबौं बनि ऐहैं॥
जो इनआम न पाइ हैं पेखक, जोरि कछूकी कछू कहि दैहैं।
पायं न नोरो गरीबनके, हमैं राम चहै तो अराम ह्वै जैहैं।

—महाराज इसे पढ़कर बहुत हंसे, और उमापति नामक वैद्यको बुलाकर आज्ञा दी, कि तुम कविजीको आराम करो। सेवकजी तो निराश हो चुके थे, और वृन्दाबन जानेकी तैयारी कर रहे थे। इतनेमें वैद्यराज आ पहुंचे। सेवक उनकी चिकित्सा करानेके लिये ठहर गये। विश्वनाथजीकी कृपासे वे कुछ दिनोंमें नीरोग हो गये। उन्होंने व्याजसे वैद्यराजकी प्रशंसा करते हुए यह सवैया महाराजको लिख भेजा—

आप बड़ो हितकै पठयो ये, बड़ोसे बड़ो हित धारिकै आये।
ऐसे कछू रस दीन्हें हमें जो, छुधा अठ पाहरू मोहि सताये॥
श्रीईश्वरीपरसाद नरायण, सेवक आजु उराहनो लाये।
जात हुते जो रमापति पास, उमापति सो हम जान न पाये॥

तात्पर्य यह कि रमापति कृष्णकी शरणमें वृन्दाबन जाना चाहते थे; परन्तु उमापति (वैद्य या विश्वनाथजी)-के सबबसे न जा सके।

सेवकका देहान्त संवत् १९३८ में काशीमें हुआ। वाग्विलास, बरवैनखसिख, बरवै नायिकाभेद आदि ग्रन्थ इनके बनाये हुए हैं। ये जानकीप्रसादके पौत्र हरिशंकरके आश्रयमें रहते थे। निम्नलिखित छन्द उन्होंने अपने कुटुम्बके वर्णनमें कहा है:—

श्रीऋषिनाथको हौं मैं पनाती, औ नाती हौं श्रीकवि ठाकुर केरो
श्रीधनीरामको पूत मैं सेवक, शंकरको लघुबन्धु ज्यों चेरो॥
मानको बाप बबा कसियाको, चचा मुरलीधर कृष्णहूं हेरो।
अश्विनीमैं घर काशिकामैं हरिशंकर भूपति रक्षक मेरो॥

१२४ मानसिंह और भिनगा नरेश।

एकबार अयोध्याके युवराज मानसिंहने भिनगा राज्यपर चढ़ाई की। पहले तो भिनगाके महाराजने वीरतासे मुकाबला किया; फिर अपना पक्ष कमजोर जान संधि करनेको उत्सुक हुए। उन्होंने यह अन्योक्ति लिखकर मानसिंहके पास भेजी—

बिनु मकरन्दवृन्द कुसुम समूहनके,
कौलौं दिन बीति हैं मलीन्दके कलीनते।
बिनु चारु चेटक चिलक चोखी चन्द्रिकाकी,
कौलौं हौस राखिहै चकोर छिनगीनते॥
युवराज कौलौं बिनु ब्रजराज प्रानप्यारे,
कौन जिय राखिहैं या मदन मलीनते।
मुकुत कलित "मानसर" बिनुआली अब,
कौलौं काल काटिहैं मराल पोखरीनते

सोचा, ये जो चोपदार पोशाक पहने सोने चांदीके आसे बल्लम लेकर रोज आते हैं, इन्हें यदि उपयुक्त इनाम न दिया जायगा, तो न जाने ये रुष्ट होकर महाराजसे क्या क्या कहेंगे, अतएव इनका आना बन्द करना चाहिये। उन्होंने निम्नलिखित सवैया लिखकर महाराजके पास भेज दिया—

जीभ उघारि कियो मैं वृथा, अपने मनमें प्रभु ना कछु लेहैं।
जेती करी सङ्ग सेवकके, इतनी कहो कासों कबौं बनि ऐहैं॥
जो इनआम न पाइ हैं पेखक, जोरि कछूकी कछू कहि देहैं।
पायं न तोरो गरोबनके, हमैं राम चहे तो अराम ह्वै जैहैं।

महाराज इसे पढ़कर बहुत हंसे, और उमापति नामक वैद्यको बुलाकर आज्ञा दी, कि तुम कविजीको आराम करो। सेवकजी तो निराश हो चुके थे, और वृन्दावन जानेकी तैयारी कर रहे थे। इतनेमें वैद्यराज आ पहुंचे। सेवक उनकी चिकित्सा करानेके लिये ठहर गये। विश्वनाथजीकी कृपासे वे कुछ दिनोंमें नीरोग हो गये। उन्होंने व्याजसे वैद्यराजकी प्रशंसा करते हुए यह सवैया महाराजको लिख भेजा—

आप बड़ो हितकै पठयो थे, बड़ोसे बड़ो हित धारिकै आये।
ऐसे कछू रस दीन्हें हमें जो, छुधा अठ पाहरू मोहि सताये॥
श्रीईश्वरीपरसाद नरायण, सेवक आजु उराहनो लाये।
जात हुते जो रमापति पास, उमापति सो हम जान न पाये॥

तात्पर्य यह कि रमापति कृष्णकी शरणमें वृन्दावन जाना चाहते थे, परन्तु उमापति (वैद्य वा विश्वनाथजी)-के सबबसे न जा सके।

सेवकका देहान्त संवत् १९३८ में काशीमें हुआ। वाग्विलास, बरवैनखसिख, बरवै नायिकाभेद आदि ग्रन्थ इनके बनाये हुए हैं। ये जानकीप्रसादके पौत्र हरिशंकरके आश्रयमें रहते थे। निम्नलिखित छन्द उन्होंने अपने कुटुम्बके वर्णनमें कहा है:—

श्रीऋषिनाथको हौं मैं पनाती, औ नाती हौं श्रीकवि ठाकुर केरो।
श्रीघनीरामको पून मैं सेवक, शंकरको लघुबन्धु ज्यों चेरो॥
मानको बाप बबा कसियाको, चचा मुरलीधर कृष्णहू हेरो।
असिनीमें घर काशिकामें हरिशंकर भूपति रक्षक मेरो॥

१२४ मानसिंह और भिनगा नरेश।

एकबार अयोध्याके युवराज मानसिंहने भिनगा राज्यपर चढ़ाई की। पहले तो भिनगाके महाराजने वीरतासे मुकाबला किया; फिर अपना पक्ष कमजोर जान संधि करनेको उत्सुक हुए। उन्होंने यह अन्योक्ति लिखकर मानसिंहके पास भेजी—

बिनु मकरन्दवृन्द कुसुम समूहनके,
कौलौं दिन बीति हैं मलीन्दके कलीनते।
बिनु चारु चेटक चिलक चोखी चन्द्रिकाकी,
कौलौं हौस राखिहै चकोर चिनगीनते॥
युवराज कौलौं बिनु ब्रजराज प्रानप्यारे,
कौन जिय राखिहै या मदन मलीनते।
मुकुत कलित "मानसर" बिनुआली अब,
कौलौं काल काटिहैं मराल पोखरीनते

भिनगा महाराजने इस अन्योक्तिमें मानसिंहको "मानसर" बनाकर अपनेको 'पोखरी' में रहनेवाला 'मराल' कहा है। मानसिंह स्वयं कवि थे। आपने 'द्विजदेव' उपनामसे 'शृंगारलतिका', 'शृंगारबत्तीसी' आदि ग्रन्थ बनाये हैं। उपरोक्त अन्योक्तिके उत्तरमें उन्होंने निम्नलिखित सवैया रचकर भिनगा-नरेशके पास भेज दियाः—

आजुते कोटि हजार बरीस लौं रीति यही नित ही चलि आई।
लाहु लह्यो तिनही जगमें जिन्ह कीन्हीं कछू न कछू सेवकाई॥
ऐ नृपहंस विचार विचारु रहौ किन आपने लाज लजाई।
आप ही दूर बसे तो कहा कहो 'मानसरोवर' की कृपनाई॥

इस अन्योक्तिको पढ़ भिनगा महाराजने संधिका प्रस्ताव किया। फौरन सन्धि स्थापित हो गयी, और परस्परका शत्रुभाव मिट गया।

१२५ श्यामसुन्दर कवि और राजा गोपीनाथ

भागलपुर जिलेके मिल्की ग्राममें राजा गोपीनाथ नामके एक बड़े जमींदार रहते थे। उनके यहां श्यामसुन्दरजी गये। दीवानजी कंटक थे। किसी तरह लग्गा न लगने देते थे। इसलिये यह बेचारे राजातक न पहुंचने पाये। किसी पर्वके दिन राजा साहब हाथीपर सवार होकर गंगास्नानके निमित्त जा रहे थे। रास्तेमें कविजीने उन्हें सम्बोधन कर यह दोहा जोरसे पढ़ा—

हंस वंस अवतंस मणि, यह अचरज अभिराम।

गोपी तो हाथी चढ़ैं, पायन सुन्दरश्याम ॥

तात्पर्य्य यह कि एक समय वह था, जब गोपियोंने मिलकर अपनेको हाथी बना लिया था और उसपर श्यामसुन्दर (श्रीकृष्ण को बैठा लिया था। और अब जमाना ऐसा आया है, कि गोपी तो हाथीपर चढ़कर जाय और श्यामसुन्दर पैदल चलें। यह सुन राजा साहब बहुत प्रसन्न हुए। उन्होंने अपने हाथीको रोककर कविजीको अपने साथ बैठा लिया। फिर वह हाथी उन्हींको दे दिया, और बहुतसा धन देकर उन्हें अपने यहां रख लिया। ये यावज्जीवन वहीं रहे। ये महाशय काशीवासी महाभारतकार मणिदेव कविके जामाता थे। इनके बनाये "काली कल्पद्रुम" और "विश्वनाथ काव्य" ये दो ग्रन्थ चित्रकाव्यमें बड़े अपूर्व हैं। मैंने इन्हें बाल्यकालमें देखा है। ये मेरे पिताके मित्र थे, और उनके पास आकर अपनी कविता सुनाया करते थे। मैं भी बड़े चावसे उन चित्रोंको देखा करता था। मेरी बहुत इच्छा है, कि ये दोनों ग्रन्थरत्न छपा दिये जायं; परन्तु जिन महाशयके पास भागलपुरमें कविजीके हस्तलिखित ये दोनों ग्रन्थ मौजूद हैं, वे किसी तरह उन्हें दिखाते भी नहीं। किसी दिन योंही ये दीमकोंके पेटमें चले जायंगे, और कविका नाम लुप्त हो जायगा!

१२८ श्यामसुन्दर कवि और सारसुधानिधि

जिस समय पण्डित सदानन्दजी मिश्रने कलकत्तेसे सारसुधानिधि पत्र निकाला; उस समय श्यामसुन्दरजी यहीं थे। उन्होंने

मंगलाचरणका यह दोहा बनाकर दिया था, जो पत्रके मुखपृष्ठपर छपा करता था—

कुमुदरसिक मन मोदकर, हरि दुख तम सर्वत्र ।
जगपथ दरसावै अचल, सारसुधानिधि पत्र ॥

आठ दस अङ्क निकलकर किसी कारणसे कुछ दिनके लिये पत्र बंद हो गया। श्यामसुन्दरजीने सदानन्दजीको लिखा, कि क्या कारण है जो कई सप्ताहसे पत्र नहीं आता। उन्होंने उत्तरमें हंसीके तौरपर लिखा, कि आपने ऐसा मंगलाचरण बनाकर दिया, कि पत्र ही बन्द हो गया। कविजीने दोहेको ध्यानसे देखा तो उसमें यह अगन पाया:—"अचल सारसुधानिधि पत्र" अर्थात् जो चलै नहीं। उन्हें यही विश्वास हो गया, कि इसी दोषसे पत्र बंद हो गया। फिर उन्होंने दोहेमें "अचल"के स्थानपर "विमल" लिखकर भेज दिया। जब वह पुनः प्रकाशित हुआ तो कई वर्षों तक निकलता रहा।

लोकोक्ति कोषपर कुछ साहित्यज्ञों और समाचारपत्रोंकी सम्मतियोंका सारांश।

पं० महावीरप्रसादजी द्विवेदी—उसका बाहरी रूपरंग बहुत ही नाभिराम है। उसका विषय और उसमें सन्निविष्ट सामग्री भी विशेष उपादेय और मनोरञ्जक है। इस पुस्तकमें कहावतोंकी उत्पत्तिके कारणविशेषकी सूचक जो कहानियां जगह जगहपर दी गयी हैं, उनसे इन लोकोक्तियोंकी महत्ता और भी बढ़ गयी है।

पं० जगन्नाथप्रसादजी चतुर्वेदी—सचमुच यह कोष बड़े कामकी हुआ है। विद्यार्थी, अध्यापक, लेखक, कवि सब ही इससे लाभ उठा सकते हैं।

बा० जगन्नाथप्रसादजी (भानुकवि)—यथार्थमें यह एक अपूर्व संग्रह है, और हिन्दीभाषामें एक बड़े अभावकी पूर्ति करता है।

विश्वमित्र—यह (पुस्तक) उपन्यासके समान पढ़ी जाती है और बूढ़ बूढ़ोंके अनुभवकी बहुतसी बातें कंठस्थ करनेका मौका देती है, इस प्रकारका उत्तम संग्रह अब तक हिन्दीमें न था।

भारतमित्र—प्रत्येक पुस्तक संग्रहालयमें तथा प्रत्येक साहित्यसेवी और हिन्दीके प्रत्येक विद्यार्थीके पास इसकी एक एक प्रति अवश्य होनी चाहिये।

स्वतंत्र—हमारे मतसे यह पुस्तक एक बड़े भारी अभावकी पूर्ति करता है। ऐसी पुस्तक अबतक नहीं निकली।

हिन्दी बंगवासी—इस पुस्तकमें कोई दश हजार कहावतोंका संग्रह किया गया है। हिन्दी साहित्यमें यह अपने ढंगकी नयी पुस्तक है। और लेखकको अपने प्रयासमें पूरी सफलता भी हुई है।

जैनगजट—ऐसी पुस्तककी हिन्दी संसारमें बड़ी कमी थी, जिसे लेखक महाशयने बड़ी खोज एवं श्रमके साथ पूरा किया है। पुस्तक अतीव रोचक और कामकी है।

मतवाला—ऐसी अच्छी पुस्तक प्रकाशित कर संग्रहकर्त्ताने हिन्दीका बड़ा उपकार किया है।

प्रताप—हिन्दीमें इस प्रकारके अच्छे और प्रामाणिक ग्रन्थकी कमी थी।

सरस्वती—संकलनकर्त्ताने अपनी पुस्तकको विशेष उपादेय बनानेमें

यथाशक्ति कोई कसर नहीं की। हिन्दीके प्रेमियोंको इसका आदर करना चाहिये।

शिक्षा—ग्रन्थकारने हिन्दी साहित्य भंडारको एक अच्छे ग्रन्थकी भेंट दी है।

बाबू श्यामसुन्दरदास—हम ग्रन्थकर्त्ता महाशयको उनके परिश्रमके लिये साधुवाद कहते हुए हिन्दी प्रेमियोंसे इस ग्रन्थका यथेष्ट आदर करनेका अनुरोध करते हैं।

प्रभा—साहित्य सेवियोंके लिये तो यह ग्रन्थ बड़े कामका है।

सिंधुसमाचार—पुस्तककी उपयोगिता, सुंदरता और छपाईकी सफाई देखनेसे मूल्य भी अधिक नहीं है।

माधुरी—लोकोक्तियोंको ढूंढ़ ढूंढ़ कर एक स्थानमें जमा करना और फिर अकारादि क्रमसे, इस ढंगसे सजाना कि जिसको चाहे सहजमें ढूंढ़ले बड़ा ही मार्केका काम है। संकलनकर्त्ता महाशयकी बहुज्ञता एवं विस्तृत अध्ययनकी सार्थकता इस कोषके निर्माणसे स्पष्ट झलकती है।

पं० सकलनारायणजी पांडेय सांख्यव्याकरण काव्यतीर्थ—इसने हिन्दीके भारी अभावको दूर कर दिया। पुस्तककी भाषा सरल तथा शुद्ध है और छपाई बड़ी अच्छी है।

सम्मेलन पत्रिका—हिन्दीके लेखकों और वक्ताओंको तो यह पुस्तक सोनेमें सुगंधका काम देगी। आशा है, कि लोकोक्ति रसिक इस पुस्तकको हृदयका हार या आंखकी पुतली बनानेसें आगा पीछा न करेंगे।

मौजी—पुस्तक विद्यार्थियों और अध्यापकोंके बड़े कामकी है। मैट्रिक से लेकर बी० ए० तकके पर्चोंमें लोकोक्तियोंके प्रश्न रहते हैं, इस पुस्तकके सहारे परीक्षार्थी उन प्रश्नोंका उत्तर अनायास ही लिख सकते हैं। परीक्षकोंको भी इसमेंसे प्रश्न छांटनेमें सुगमता होगी।

अग्रसर—आजतक हिन्दीमें कोई ऐसा उत्तम संग्रह नहीं था। यह स्थायी साहित्यका एक उत्तम अंग है। केवल विद्यार्थियोंको ही नहीं अनुभवी वक्ताओं, और लेखकोंको भी इससे यथेष्ट लाभकी संभावना है।

सैनिक—यह पुस्तक हिन्दीके लेखक, वक्ता, कवियों और पत्र संपादक सभीके लिये उपयोगी है। प्रत्येक स्कूल, पुस्तकालय और हिन्दी प्रेमीको अवश्य इसकी एक एक प्रति लेनी चाहिये। हमें आशा है, कि इस पुस्तकका हिन्दी भाषी जनतामें यथेष्ट आदर होगा।

Modern Review—It is not the dexterous arrangement of thousands of beautiful proverbs but the incidental insertion of stories pertaining to the creation of the same, and their masterly elucidation that constitute the true achievement of the author. The giving of well-chosen quotations from the renowned poets of the past to exemplify the proper usage of various proverbs, has greatly facilitated the task of readers and has made the whole thing highly useful. 'A proverb is to speech what salt is to food'; therefore the book, in our opinion, is not only of a great help to students and scholars, wtiters and poets but also to all readers and public speakers, especially at this transitional period, when great minds are Suggesting to make Hindi the Lingua Franca of India. The author of such a useful book has undoubtedly rendered a signal service to us all in general and to the Hindi world in particular. We offer our heartfelt congratulations to the author and entertain high hopes that the book will be appreciated by the public.

Calcutta Review, The excellence of the book does not lie only in the researches and systematic collection of over ten thousand popular sayings current all over the Northern part of India from Rajputana to Bihar, but the incidental insertion of anecdotes pertaining to the creation of those proverbs and the quotations from the works of old and mediaval standard Hindi poets. It is equally useful to Europeans learning Hindustani, to professors and teachers as well as to students who are required in their University examinations to illustrate the uses of such proverbs.